ऋग्वेद यजुर्वेद

ओ३म्

भक्ति दर्पण

अर्थात

आत्म प्रसाद

जिसे
शहीदे-धर्म महाशय
राजपाल जी ने आर्य-
समाज के कई प्रसिद्ध
विद्वानों के सहयोग
से रचा।

प्रकाशक

[illegible]
[illegible] दिल्ली

अथर्ववेद

आज तक भक्ति-दर्पण का यह सुन्दर गुटका १ लाख २० सहस्र से ऊपर छप चुका है।

२५ वीं बार—१९५०—मूल्य डेढ़ रुपया
आर्य-संवत्—१,९७,२९,४९,०५१
विक्रमी सं०—२००७
दयानन्दाब्द—१२६

प्रकाशक—श्री विश्वनाथ, एम० ए०,
अध्यक्ष—राजपाल एण्ड संज़,
नई सड़क, दिल्ली।

मुद्रक—बालकृष्ण, एम० ए०
युगान्तर प्रेस, मोरी गेट, दिल्ली।

उपहार

श्री ____________

भक्ति-दर्पण

* कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् *

आर्य हमारा नाम है,
सत्य हमारा कर्म।
ओ३म् हमारा देव है,
वेद हमारा धर्म॥

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

—दयानन्द

दो शब्द

चिरकाल से मैं इस आवश्यकता को अनुभव कर रहा था कि कोई ऐसी पुस्तक रची जाए जो वैदिक धर्म में नए प्रविष्ट होने वाले मनुष्यों (स्त्री अथवा पुरुषों) को आत्म-प्रसाद के रूप में दी जाय, जिसके द्वारा सर्वसाधारण को ज्ञात हो कि इस महान्, ईश्वरीय, दुर्लभ, मनुष्य-जीवन को सफल बनाने के लिये मनुष्य के क्या क्या कर्तव्य हैं? मैंने अपने मित्र (स्व०) पं० बृहस्पति जी आर्योपदेशक के सामने इस आवश्यकता को प्रगट किया। वह मुझ से सहमत हुए और उन्होंने मेरे साथ मिलकर इस उपयोगी पुस्तक को पूर्ण किया। पाठकों को यह हर्ष-सम्वाद सुनाते

हुए मेरा हृदय प्रफुल्लित होता है कि इस छोटी-सी, परन्तु अति उपयोगी पुस्तक को आर्य्य-समाज के रत्नों तथा जनता ने इतना अपनाया है, कि थोड़े ही समय में इसके ११* संस्करण निकल गये हैं। इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने में मुझे आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० भगवद्दत्त जी बी० ए०, पं० परमानन्द जी बी० ए०, पं० चमूपति जी एम० ए० तथा म० मदनजीत जी आदि प्रसिद्ध विद्वानों ने सहायता दी है, इसके लिये मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

अब यह पुस्तक इतनी उपयोगी हो गई है कि साधारण मनुष्य भी इसको पढ़कर वैदिक धर्म का अनुयायी हुए बिना नहीं रह सकता।

*यह भूमिका अमर-हुतात्मा म० राजपाल जी ने ११ वें संस्करण के समय लिखी थी। अब यह २२वां संस्करण पाठकों के हाथों में है।

आशा है कि आर्यसमाजें तथा अन्य संस्थायें उदार चित्त से इस पुस्तक का प्रचार करेंगी, और प्रत्येक नये प्रविष्ट होने वाले सदस्य को इसकी एक प्रति आत्म-प्रसाद के रूप में देंगी।

सरस्वती-आश्रम
लाहौर
२५-६-१९२८

विनीत—
राजपाल

वक्तव्य

भक्ति-दर्पण का २९वां संस्करण पाठकों के हाथ में है। इसमें कई अन्य उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। इस बार अशुद्धियों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने इस नये संस्करण को अधिक उपयोगी बनाने में जो कार्य किया है उसके लिये हम उनके विशेष आभारी हैं।

दिल्ली ता० १-७-'५० —विश्वनाथ, एम० ए०

विषय-सूची

भजन-सूची

॥ ओ३म् ॥

भक्ति-दर्पण

जीवन की सफलता के साधन

★

—विषय-प्रवेश—

भक्ति-मार्ग के यात्रियों, आर्य्य-समाज अथवा उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली अन्य संस्थाओं (आर्य-कुमार सभा इत्यादि के) सभासदों, स्त्री-पुरुषों तथा पाठशालाओं के

विद्यार्थियों के लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी परम कल्याण की प्राप्ति के लिए, जिन बातों का जानना व स्मरण करना अत्यन्त आवश्यक है, उनका यहां संक्षिप्त रीति से उल्लेख किया जाता है। विस्तृत वर्णन अगले पृष्ठों में किया जावेगा।

(१) आर्य्यसमाज और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं में प्रवेश करने वाले प्रत्येक सभासद् का कर्तव्य है कि वह आर्यसमाज के दस नियमों को कण्ठस्थ कर ले।

(२) प्रत्येक सभासद् को उसके नित्य-कर्मों का स्मरण होना चाहिये और वह अपना ऐसा समय-विभाग बनाये जिससे यथासम्भव नित्यकर्मों में अनध्याय न हो सके।

(३) आर्यसमाज के विचारात्मक और क्रियात्मक सिद्धान्तों का बोध प्रत्येक सभासद् को होना चाहिये। उनका विस्तृत वर्णन सत्यार्थप्रकाश में किया है, परन्तु संक्षिप्त रीति से ये सिद्धान्त अगले पृष्ठों में वर्णन किये गये हैं।

(४) यदि प्रत्येक सभासद् वेदों और शास्त्रों को पढ़ नहीं सकता, तो न्यून से न्यून उसे यह तो ज्ञान होना ही चाहिए कि वेद कितने हैं, दर्शन कितने हैं, उपनिषदें कितनी हैं, वेदों के अङ्ग तथा उपांग कौन-कौन से हैं? संक्षिप्त रीति से वैदिक धर्म सम्बन्धी साहित्य का चित्र भी इस पुस्तक में दिया गया है।

(५) प्रत्येक सभासद् को यत्न करना

चाहिये कि वह आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों को आर्य भाषा (हिन्दी) में पढ़ सके। महर्षि के ग्रन्थों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि वे आर्यभाषा में पढ़े जायें। आर्यभाषा अधिक से अधिक एक सप्ताह में सीखी जा सकती है। यदि प्रत्येक भाई बहिन के पास इतना समय नहीं कि ऋषि के ग्रन्थों को पढ़ सके, तो न्यून से न्यून उसे यह तो अवश्य ज्ञान होना चाहिये कि उन्होंने हमारे हित के लिये कौन-कौन से ग्रन्थ किस २ विषय पर रचे हैं। उन ग्रन्थों के नाम और विषय भी अगले पृष्ठों में दिये गए हैं।

(६) प्रत्येक आर्य सभासद् को अपना और अपनी संतान के जीवन का समय-विभाग हर समय स्मरण रखना चाहिये,

अर्थात् उसे ज्ञात होना चाहिए कि किस आयु में उसे क्या काम करना उचित है। आर्यों के जीवन का कार्यक्रम विस्तृत रूप से महर्षि दयानन्द ने संस्कार-विधि में सोलह संस्कारों के रूप में दिया है। इस पुस्तक में उन संस्कारों के लाभ, नाम और उनका समय दिया गया है और साथ ही आर्यों के त्यौहारों, यज्ञों और पर्वों का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त आर्यों के सामाजिक धर्म, यम नियम भी लिखे गये हैं।

(७) प्रत्येक सभासद् को संध्या और हवन नित्यप्रति करना चाहिए। नित्य-कर्मों में अनध्याय किसी अवस्था में भी नहीं होना चाहिए। इस पुस्तक में प्रार्थना

मन्त्र, संध्या और हवन-मन्त्र अर्थसहित दिये गये हैं।

(८) प्रत्येक सभासद् को प्रार्थना और उपासना के कुछ मन्त्र भी कण्ठस्थ होने चाहियें, जिनको संध्या तथा अग्निहोत्र के पश्चात् पढ़कर, परमात्मा से पापों की निवृत्ति और सुखों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की जावे।

(९) कुछ प्रार्थनायें और ईश्वर-भक्ति के भजन भी स्मरण होने चाहियें, जिससे कि अपनी सभा में किसी उपदेशक के अभाव की अवस्था में कोई कठिनता प्रतीत न हो। एवं प्रत्येक सभासद् प्रार्थना, उपासना तथा ईश्वर का भजन कराने के लिये भी उद्यत हो सके।

(१०) जिस महान् आत्मा ने हमें इस

योग्य बनाया कि हम शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति और अपने धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय कर सकें, उसके विषय में यदि आर्यसमाज के किसी सभासद् को कुछ बोध न हो तो यह बड़ी कृतघ्नता होगी। इसलिये पुस्तक के अन्त में दो-चार बातें उनके पवित्र चरित्र के सम्बन्ध में भी दे दी गई हैं, जिन्होंने सारे संसार में आर्य जाति का सिर ऊंचा किया है।

यदि धर्म के प्रेमी 'भक्ति-दर्पण' का श्रद्धा और प्रेम से पाठ करेंगे तो प्रतिदिन उनका जीवन उन्नत और हृदय विशाल होता जाएगा, तथा धर्म में उनकी श्रद्धा और भक्ति बढ़ती जायगी। अब उपर्युक्त सब बातों का विस्तार से उल्लेख किया जाता है।

आर्यों के नित्यकर्म

ऋषि दयानन्द का कथन है कि 'आर्य' नाम विद्वान्, धार्मिक और आप्त पुरुष का है। अतः आर्यों के नित्य-कर्म ऐसे ही होने चाहियें, जो धार्मिक, आप्त पुरुषों के योग्य हों।

प्रातःकाल जागने के समय से ही नित्य-कर्मों का आरम्भ हो जाता है। मनु भगवान् (४-९२) में कहते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत,
धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्,
वेदतत्वार्थमेव च ॥

ब्राह्म-मुहूर्त अर्थात् चार घड़ी रात रहे उठकर मनुष्य धर्म और अर्थ का चिन्तन करे, तथा उन शारीरिक कष्टों का भी विचार करे, जो धर्म और अर्थ की प्राप्ति में विघ्न डालने वाले हैं। वेद के तत्वार्थ का विचार करे, क्योंकि उस समय बुद्धि स्वच्छ और चित्त प्रसन्न होता है। परन्तु यह तब ही हो सकता है, जब गृहस्थी लोग रात्रि के ९ या १० बजे तक सो जाया करें, क्योंकि स्वास्थ्य के लिए ७ घण्टे शयन करना आवश्यक है। सोने के पूर्व हाथ-मुँह धोवें। चारपाई पर लेटने के पश्चात् यदि तत्काल ही नींद न आवे, तो दो अथवा तीन बार प्राणायाम करके प्रणव [ओ३म्] का जाप करें, निद्रा आ जावेगी। जिस समय नींद खुले, उसी समय उठ

कर बैठ जावें और प्रार्थना के वे मन्त्र ऊंचे स्वर से पढ़ें, जो इस पुस्तक में 'ब्राह्म-मुहूर्त में पढ़ने योग्य मन्त्र' के नाम से दिये गये हैं। फिर धर्म का चिन्तन करने के पश्चात् उस दिन के करने योग्य कामों का विचार करें। माता पिता के चरण छुयें, उनको स्नानादि करायें। स्त्रियां चक्की पीसें अथवा दही बिलोवें—स्मरण रखो 'जिस घर चाटी-चरखा-चक्की, उसकी सारी बातें पक्की'। धर्म का चिन्तन करने के पश्चात् शौचादि से निवृत्त होकर अपनी धर्मपत्नी सहित वायु-सेवन के लिये बाहर जावें। लौटकर कुछ व्यायाम करें, तत्पश्चात् स्नान कर सारा परिवार मिलकर संध्या, अग्निहोत्र तथा भजन-गान करें। तत्पश्चात् सब नर-नारी अलग-अलग

स्वाध्याय में लग जावें। वृद्ध, युवा, बालक, स्त्री, पुरुष सब को ही प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये। शास्त्रों का ही कथन है कि वृद्धावस्था से पूर्व प्रतिदिन मनुष्यों को धर्म अभ्यास करना चाहिए। धर्म के मर्म को जानने के लिये स्वाध्याय से बढ़ कर कोई साधन नहीं है। स्वाध्याय के लिए ऋषिकृत ग्रन्थ सब से उत्तम हैं। वेदों और शास्त्रों तक पहुँचने का यह एकमात्र साधन है। यदि आलस्य त्याग कर काम करने का स्वभाव हो तो ये सारे काम प्रातः ७ बजे तक समाप्त हो सकते हैं।

इससे निवृत्त होकर सब परिवार यथा-सामर्थ्य दूध पिये अथवा कोई और प्रातराश [कलेवा] करें। फिर अपने-अपने

काम में लग जावें। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि कोई काम धर्म-विरुद्ध न हो। भोजन का समय दस ग्यारह बजे के मध्य का होना चाहिए अथवा जैसी अपनी प्रकृति हो। भोजन का आटा मोटा, अनछना एवं चक्की, ख़रास व घराट का हो, यन्त्र [मशीन] का कदापि न हो। पीने के लिये दूध शुद्ध होना चाहिये, परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक आर्य के घर में एक-एक गाय हो। इससे जहां दूध विशुद्ध [ख़ालिस] मिलेगा वहां गोरक्षा भी होगी। भोजन से पूर्व पितृयज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ करें। यदि कोई अतिथि आजावे तो सबसे पूर्व उसको भोजन करावें। नौकरों को भी

पहले भोजन कराना चाहिए, फिर आप परिवारसहित भोजन करें। भोजन चबाकर करना चाहिये। हल्का-सा भोजन तीसरे पहर को भी होना चाहिये जिसमें यथा-सामर्थ्य गव्यदुग्ध अथवा फल हों। रात्रि का भोजन संध्या के सात व आठ बजे तक होना चाहिये। जिस गृह में सायं-प्रातः हवन से वायु की शुद्धि का उपदेश दिया गया हो उस गृह में हुक्के की दुर्गन्ध नहीं फैलनी चाहिये। वस्त्र सदा स्वच्छ तथा स्वदेशी और घर वायु-युक्त होना चाहिए। दिन-भर काम कर चुकने के पश्चात् सायं समय फिर संध्या अग्निहोत्र की तय्यारी करनी चाहिए। सायंकाल का अग्निहोत्र और भोजन भी परिवार-सहित होना चाहिए। इससे परिवार में प्रेम बढ़ता है।

कभी-कभी आर्य परिवारों को निमंत्रण देकर पारिवारिक सत्संग भी करने चाहियें। सन्तानों में सदाचार और धर्म के सत्कार का यह बहुत अच्छा साधन है।

सोने से पूर्व गृहपति को चाहिए कि बच्चों के हाथ मुँह धुलाकर उनसे ईश्वर प्रार्थना के मन्त्रों का उच्चारण करावें। आर्य सन्तानों को शिक्षा दी जावे कि वे सोने से पहले घर के सब बड़ों को श्रद्धा-पूर्वक नमस्ते करें। सब से पीछे माता के पांव छूकर नमस्ते कहें। माता आशीर्वाद देकर उनको सुला देवे। अविवाहित लड़कों वा लड़कियों को सदैव कठोर लकड़ी के तख्त पर सुलावें, इससे ब्रह्मचर्य में बड़ी सहायता मिलती है।

बिछौना भी स्वच्छ होना चाहिए।

चादर बदलते रहना चाहिए। बिस्तर भी प्रतिदिन धूप में सुखाना चाहिए। रजाई में मुँह ढाँप कर कभी मत सोवें। इससे स्वास्थ्य की बहुत हानि होती है। झरोखे या रोशनदान खुले रहने दें। फिर देखें कि प्रातःकाल सारा परिवार कैसा स्वस्थ जागता है। इन्हीं कर्मों से दीर्घायु, उत्तम सन्तान तथा धन की प्राप्ति होती है।

★

आर्यों का समय-विभाग

शीत-ऋतु—प्रातःकाल ५ से ५॥ बजे तक धर्म, अर्थ और काम का चिन्तन, प्रार्थना मन्त्रों का उच्चारण और शौच।

५॥ से ६॥ बजे तक वायुसेवन (सैर) व्यायाम और स्नान।

६॥ से ७॥ तक अग्निहोत्र, सन्ध्या और भजन इत्यादि।

७॥ से ८॥ तक स्वाध्याय इत्यादि। यदि समय अधिक मिल सके तो स्वाध्याय अधिक करना चाहिए, परन्तु आध घण्टा से न्यून समय तो किसी अवस्था में नहीं देना चाहिए। इसके पश्चात् दुग्ध पीकर घर के आवश्यक काम करलें। फिर अपने अपने काम पर दफ्तर अथवा दुकान पर चले जावें। पत्र-व्यवहार और व्यापार आदि आर्य-भाषा में ही करें, सारा दिन धर्म-पूर्वक काम करें।

सायंकाल को ६ बजे से ७ बजे तक सन्ध्या, अग्निहोत्र और भजन आदि।

७ से १० बजे तक खान-पान और परिवार सम्बन्धी आवश्यक काम।

ग्रीष्म ऋतु में—प्रातःकाल ४ से ४॥ बजे तक धर्म और अर्थ का चिन्तन और प्रार्थना-मन्त्रों का उच्चारण तथा शौच।

४॥ से ५॥ बजे तक वायु-सेवन, व्यायाम और स्नान।

५॥ से ६॥ बजे तक सन्ध्या, अग्निहोत्र और भजनादि।

६॥ से ७ बजे तक स्वाध्याय, फिर थोड़ा सा गौ का दुग्ध अथवा लस्सी पीकर यदि घर का कोई काम हो तो वह कर लें, नहीं तो अपने काम पर चले जायें।

११ से १२ बजे तक भोजन करें, फिर अपने काम में लग जायें।

ब्राह्म-मुहूर्त में पढ़ने योग्य मन्त्र

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे,
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं,
प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

अर्थ—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग प्रभात समय में स्वप्रकाश-स्वरूप, परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त, प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान्, सूर्य-चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की स्तुति करते हैं और भजनीय, सेवनीय, ऐश्वर्ययुक्त, पुष्टिकर्त्ता, अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे, अन्तर्यामी प्रेरक, और पापियों

को रुलाने हारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना करते हैं, वैसे तुम लोग भी किया करो ॥१॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम,
वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्,
राजाचिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

प्रातः पांच घड़ी रात्रि रहे, जयशील, ऐश्वर्य के दाता, तेजस्वी, अन्तरिक्षस्थ सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और जो कि सूर्यादि लोकों का विशेष करके धारणकर्ता, सब का जानने हारा, दुष्टों का भी दण्ड-दाता और सब का प्रकाश है—उस भजनीय स्वरूप को इस प्रकार सेवन करता

हूँ और भगवान् परमेश्वर भी इसी प्रकार सब को उपदेश करता है कि "जो मैं सूर्यादि जगत् को बनाने और धारण करनेहारा हूँ, उस मेरी आज्ञा में तुम चला करो।"

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो,
भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्
भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

हे भजनीय स्वरूप! सबके उत्पादक, सत्याचार में प्रेरक, ऐश्वर्यदाता! हमें प्रज्ञा दीजिये और अपने दान पर हमारी रक्षा कीजिये। आप गाय, घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्य-श्री को

हमारे लिये प्रकट कीजिये। आपकी कृपा से हम लोग उत्तम मनुष्यों के सहयोग से बहुत वीर मनुष्यों वाले होवें ॥३॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत,
प्र पित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य
वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

हे भगवान्! आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग इस समय प्रकर्षता तथा उत्तमता की प्राप्ति में और इन दिनों के मध्य में ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् होवें। और हे परम पूजित! असंख्य धन देनेहारे! सूर्यलोक के उदय

में पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की अच्छी उत्तम प्रज्ञा और सुमति में हम लोग सदा प्रवृत्त रहें ॥४॥

भग एव भगवा अस्तु देवाः,
तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति,
स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥

हे सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर ! जिससे आपकी सब सज्जन निश्चय करके प्रशंसा करते हैं वह आप, हे ऐश्वर्यप्रद ! इस संसार और हमारे गृहस्थाश्रम में अग्रगामी और आगे-आगे सत्य कर्मों में बढ़नेहारे हूजिये और जिससे सम्पूर्ण

ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे पूजनीय देव होवें, इसी हेतु से हम विद्वान् लोग सकलैश्वर्य-सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत्त होवें ॥४॥

भोजन के समय पढ़ने योग्य मंत्र

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्य—
नमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्रदातारं तारिष,
ऊर्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

यजु० ॥११।८३॥

"हे अन्नपते परमात्मन् ! इस संसार के प्राणी आपका दिया हुआ अन्न खाते हैं। परमात्मन् ! हम स्वास्थ्य-वर्धक, रोगों के कीटाणुओं से रहित, शुद्ध बल-वर्धक अन्न का सेवन करें। अन्न-दान करने वाले मनुष्यों को दुःख से पार कर, दो पैर वाले और चार पैर वाले प्राणिमात्र के लिये आपका दिया हुआ अन्न कल्याण-कारी हो।" परमात्मा का स्मरण करके ही भोजन करना चाहिये। ऐसा अन्न ही मनुष्यमात्र में आर्य-भाव उत्पन्न करता है। धर्म के मुख्य साधन शरीर की उन्नति के लिये बुद्धिपूर्वक तथा संयमपूर्वक भोजन करना चाहिये।

सायं ६॥ से ७॥ बजे तक अग्निहोत्रादि।
७॥ से ९ बजे तक भोजन आदि।

९ बजे सारा परिवार सो जाये। सोने से पूर्व सारा परिवार मिलकर इन आगे दिये मन्त्रों का पाठ करे—

सोते समय पढ़ने योग्य मन्त्र

(यजुर्वेद का शिव-सङ्कल्प सूक्त)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं,
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं,
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥

अर्थ—जो दिव्य गुणों वाला मन जागते तथा सोते समय दूर-दूर चला जाता

है जो दूर जाने वाला, ज्योतियों की प्रकाशक ज्योति है, वह मेरा मन अच्छे विचारों वाला होवे ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां,
तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

य० । अ० ३४ । २ ॥

अर्थ—जिस मन के द्वारा मननशील मनुष्य यज्ञ आदि में वैदिक तथा अन्य कर्तव्य-कर्म करते हैं, तथा युद्धों के अन्दर धीर और गम्भीर नेता लोग विचार-विमर्श करते हैं, जो अपूर्व शक्ति वाला, पूजनीय लोगों के अन्तःकरण में है, वह मेरा मन अच्छे संकल्प

वाला हो ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च,
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

य० । अ० ३४ । ३ ॥

अर्थ—जिस मन के अन्दर ज्ञानशक्ति, चिन्तन-शक्ति, धैर्य-शक्ति रहती है, जो मन प्रजाओं में अमृतमय और तेजोमय है। जो इतना शक्तिशाली है कि इसके बिना मनुष्य कोई भी कर्म नहीं कर सकता —सब कर्म इसी की सहायता से किये जाते हैं—वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला होवे ॥३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्,
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता.
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥

य० । अ० । ३४ । ४ ॥

अर्थ—भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में जो कुछ होता है, वह सब इसी मन द्वारा ग्रहण किया जाता है। पांच ज्ञानेन्द्रियां और अहङ्कार तथा बुद्धि द्वारा जो यह जीवन-यज्ञ चल रहा है, इसका, तथा मन, बुद्धि, कार्यकारी इन्द्रियों का जो अधिष्ठाता है, वह मेरा मन सदा शुभ

नोट—सप्त होता=५ ज्ञानेन्द्रियां, ६ वां अहङ्कार, ७ वीं बुद्धि ।

संकल्प वाला बने और कदापि अशुभ संकल्प न करे ॥४॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि
यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिꣳश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां,
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥
य० । अ० ३४ । ५ ॥

अर्थ—जिस मन में सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र तथा अन्य सब ज्ञान ओतप्रोत (भरा) रहता है, जिस मन की शक्ति ऐसी है कि जिसमें यह सब ज्ञान रह सके, सब बुद्धिमान् लोग इसी से मनन करते हैं। वह शक्तिशाली मेरा मन सदा शुभ विचारों से युक्त हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्,
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं,
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६॥
य० । अ० ३४ । ६ ॥

अर्थ—जैसे अच्छा सारथि घोड़ों को लगाम लगाकर नियम में रखता है उसी प्रकार वश में किया हुआ यह मन मनुष्यों को अभीष्ट स्थान पर ले जाता है। जो मन हृदयस्थ है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता, जो सबसे तीव्र गति वाला है, वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।

—: चार वर्ण :—

(१) ब्राह्मण

अध्यापनमध्ययनं, यजनं याजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चैव, ब्राह्मणानामकल्पयत् ।
मनु० १ । ८८ ॥

अर्थ—पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना तथा लेना ब्राह्मण के कर्म हैं । परन्तु दान लेने की अपेक्षा पढ़ा कर और यज्ञ करा कर आजीविका करनी उत्तम है ॥१॥

(२) क्षत्रिय

प्रजानां रक्षणं दानं,
इज्याऽध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च,
क्षत्रियस्य समासतः ॥

मनु० ॥१।८९॥

अर्थ—पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, प्रजा-पालन, विषयों में आसक्त न होना, यह क्षत्रियों के कर्म हैं ॥२॥

(३) वैश्य

पशूनां रक्षणं दान-
मिज्याऽध्ययनमेव च
वणिक्पथं कुसीदं च,
वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

मनु० ॥१॥६०॥

अर्थ—पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशु-पालन, व्यापार करना, ब्याज (सूद) लेना और खेती करना, यह वैश्य के कर्म हैं ॥३॥

(४) शूद्र

एकमेव हि शूद्रस्य, प्रभुः कर्म समादिशत्
एतेषामेव वर्णानां, शुश्रूषामनसूयया ॥

मनु० ॥१॥६१॥

अर्थ—परमेश्वर ने शूद्रों के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना—यही कर्म करने की आज्ञा दी है।

—: चार आश्रम :—

मनुष्य-जीवन अधिक-से-अधिक उपयोगी और शुद्ध बन सके, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसको चार विभागों में विभक्त किया गया है।

१. ब्रह्मचर्याश्रम— आत्मिक और शारीरिक उन्नति मनुष्य को अपने जीवन के पहले भाग में, जिसकी न्यून-से-न्यून अवधि २५ वर्ष है, करनी चाहिये। यही आश्रम है जिसमें विद्याध्ययन करके ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्णरीति से पालन करते हुए समस्त अन्तरीय और बाह्यकरणों को

पुष्ट बनाया जाता और आत्मबल संचय किया जाता है।

२. गृहस्थाश्रम— जीवन के दूसरे भाग का नाम है। इसमें मनुष्य को मर्य्यादा के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये और उपयोगी धर्म-पूर्वक उद्यम करके धन-संचय करना चाहिये।

३. वानप्रस्थ ४. संन्यास

तीसरा, वानप्रस्थ और चौथा, संन्यास आश्रम है। मनुष्य को २५ वर्ष गृहस्थ-जीवन व्यतीत करके समस्त गृह और गृह की सम्पत्ति अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर, गृहस्थाश्रम से मुक्त होकर, ५१ वें व र्ष में

वानप्रस्थाश्रम में चले जाना चाहिये। इस आश्रम में आकर उसे तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए अपनी आवश्यकताओं को न्यून-से-न्यून करके जनता की सेवा करनी चाहिये। इस आश्रम के लोग बिना लम्बा-चौड़ा वेतन लिए, निश्शुल्क अध्यापन आदि सभी व्यवसायों (पेशों) की शिक्षा देने वाले बना करते थे और अब भी बन सकते हैं। इसके पश्चात् चौथे आश्रम में प्रवेश करके जीवन के अन्तिम भाग को अभ्यास, स्वाध्याय और जनता को उपदेश देने आदि श्रेष्ठ कार्य्यों में व्यतीत करना चाहिये।

आर्य्य समाज

'आर्य्य' शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ वा अच्छा, धर्मात्मा, कर्त्तव्य-परायण, शान्त-चित्त, उदारचरित, न्यायमार्गोलम्बी और 'समाज' का अर्थ है सभा वा संघ जिसमें लोग प्रगतिशील हों और सब दुर्गुणों तथा कुप्रथाओं का निराकरण करने वाले हों। इसलिए 'आर्य्यसमाज' का अर्थ हुआ अच्छे पुरुषों की सभा।

'आर्य्य समाज' को महर्षि दयानन्द ने ७ अप्रैल १८७५ ई०, अर्थात् चैत सुदी ५ स० १९३२ वि० को बम्बई में स्थापित किया था। इसके पश्चात् भारतवर्ष के प्रत्येक बड़े नगर और ग्राम में समाज खुल गये। इस समय आर्यसमाजों की संख्या हजारों में है।

-: आर्य्यसमाज के नियम :-

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिएं।

(६) संसार का उपकार करना आर्य-समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिये।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

—: आर्य्य-समाज के उपनियम :—

—:०:—

१—इसका नाम 'आर्य-समाज है।

२—इस समाज के उद्देश्य वही हैं, जो इनके नियमों में वर्णन किये गये हैं।

३—जो लोग आर्य-समाज में नाम लिखाना चाहें और समाज के उद्देश्य के अनुकूल आचरण स्वीकार करें, वे आर्य-समाज में प्रविष्ट हो सकते हैं। परन्तु उनकी आयु अठारह वर्ष से न्यून न हो।

४—जो लोग आर्य-समाज में प्रविष्ट होंगे, वे आर्य कहलावेंगे।

५—जो आर्यसमाज के उद्देश्य के विरुद्ध काम करेगा, वह न तो आर्य और न आर्य सभासद् गिना जावेगा।

६—यह सभा प्रत्येक सप्ताह में न्यून-से-न्यून एक बार हुआ करेगी।

७—समाज के सब कार्यों के प्रबन्ध के लिये एक अन्तरङ्ग-सभा नियुक्त की जावेगी और इसमें तीन प्रकार के सभासद होंगे अर्थात्—

(क) प्रतिनिधि (ख) प्रतिष्ठित, और (ग) अधिकारी।

८—अधिकारी छः प्रकार के होंगे :—

(क) प्रधान, (ख) उपप्रधान, (ग) मंत्री, (घ) उपमंत्री, (ङ) कोषाध्यक्ष, और (च) पुस्तकाध्यक्ष।

९—सब आर्य्य और आर्य्यसभासदों को संस्कृत वा आर्य भाषा (हिन्दी) अवश्य जाननी चाहिये।

१०—सब आर्य्य और आर्य्य-सभा-

सदों को उचित है कि उत्सवों पर समाज को दान दिया करें।

११ सब आर्य्य और आर्य्य सभासदों को उचित है कि सुख और दुःख, दोनों में परस्पर सहायता किया करें।

१२ - चुनाव वर्ष पीछे हुआ करेगा। पुराना अधिकारी फिर नियत हो सकेगा। स्थान रिक्त होने पर अन्तरङ्ग सभा स्वयं चुन सकती है।

१३—विशेष कार्य के लिये उपसभायें बनाई जा सकती हैं।

१४—अन्तरङ्गसभा मास में दो बार हो।

१५—एक तिहाई सभासद् सभा कर लेवें।

—: सत्सङ्ग के नियम व कार्यक्रम :—

१—सत्संग प्रातः रविवार अथवा

किसी सातवें दिन को हुआ करे।

२—पहले सब मिल कर संध्या तथा अन्य वेद-मंत्र उच्च स्वर से मिलकर पढ़ें।

३—फिर ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना-उपासना के मन्त्र तथा भजन हों।*

४—फिर स्वस्तिवाचन हवन यज्ञ हो।

५—तत्पश्चात् वेद तथा अन्य आर्य्य ग्रन्थों का पाठ हुआ करे।

६—पुनः उपदेश हो।

७—भजन तथा ऋग्वेद के अन्तिम (एकता के) सूक्त के मन्त्रों का पाठ हो।

---

* प्रार्थना व उपासना के मंत्र शांत स्वर से पढ़ करके एक व्यक्ति प्रार्थना करे, फिर स्वस्तिवाचन, शांतिपाठ पढ़कर भजन-गान करें।

आर्य्यसमाज के सिद्धान्त

(१) ईश्वर एक है, कई ईश्वर नहीं हैं।

(२) ईश्वर निराकार है। उसको आँख से नहीं देख सकते और न उसकी मूर्ति बना सकते हैं।

(३) ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वह सब कुछ जानता है और छोटी से छोटी वस्तु के भी भीतर और बाहर विद्यमान् है।

(४) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, अर्थात् वह अपने किसी काम के करने के लिये आंख, कान, नाक आदि शरीर वा अन्य किसी उपकरण (औज़ार) की आवश्यकता

नहीं रखता। जो कुछ करता है, बिना किसी वस्तु वा व्यक्ति की सहायता के करता है।

(५) ईश्वर अजन्मा और निर्विकार है। वह मनुष्य के समान जन्म-मरण में नहीं आता। अवतार भी नहीं लेता। राम, कृष्ण आदि ईश्वर के अवतार नहीं थे, धर्मात्मा पुरुष थे, इसलिए उनके अच्छे कामों को स्मरण करना चाहिए परन्तु उनकी मूर्तियों को ईश्वर समझ कर नहीं पूजना चाहिए।

—: जीव :—

(१) जीव चेतन है। इसकी संख्या अनन्त है।

(२) जीव न कभी मरता है न उत्पन्न होता है। अर्थात् कभी ऐसा समय नहीं

हुआ जब जीव न रहा हो और न ऐसा समय होगा जब जीव न रहेगा।

(३) जीव में ज्ञान तो है, पर थोड़ा। और शक्ति भी थोड़ी है, इसलिए जीव को अल्पज्ञ कहते हैं।

(४) जीव शरीर धारण करता है। कभी मनुष्य का, कभी पशु का, कभी कीड़े आदि का।

(५) जीव जैसा कर्म करता है उसको उसके फल के अनुसार वैसा ही शरीर मिलता है। बुरे कर्म के लिए बुरी योनि और अच्छे कर्म के लिए अच्छी योनि मिलती है। इसी को जीव-अवतार कहते हैं। अवतार जीव का होता है, ईश्वर का नहीं।

(६) जीव जब अच्छे कर्म करते-करते सबसे ऊंची अवस्था तक पहुँच जाता है तो

मोक्ष मिल जाता है। अर्थात् शरीर नहीं रहता और वह स्वतन्त्र विचरता हुआ ईश्वर के आनन्द में मग्न रहता है।

(७) मोक्ष ३१ नील २० खर्ब ४० अर्ब वर्ष के लिये होता है। इसके पश्चात् जीव मोक्ष से लौटता है और उत्तम ऋषियों का शरीर धारण करता है। इस शरीर में यदि अच्छे काम करता है तो फिर मुक्त हो जाता है। और यदि बुरे कर्म करता है तो नीचे की योनियों का चक्र आरम्भ हो जाता है।

—: प्रकृति :—

(१) प्रकृति—सत्त्व, रजस्, तमम् की साम्यावस्था और छोटे-छोटे परमाणुओं का नाम है।

(२) यह परमाणु जड़ हैं। इनमें ज्ञान नहीं।

(३) यह परमाणु अनादि और अनन्त हैं, अर्थात् न कभी उत्पन्न हुए न नष्ट होंगे।

(४) ईश्वर इन्हीं परमाणुओं को जोड़ कर सृष्टि बनाता है। आग, पानी, वायु और पृथ्वी—यह इन्हीं परमाणुओं के संयोग का फल हैं। सूर्य, चन्द्र आदि इन्हीं से बने हैं। हमारे शरीर भी इन्हीं परमाणुओं से बने हैं।

(५) जब परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं तो इसको 'प्रलय वा ब्रह्मरात्रि' कहते हैं। हैं। जब सृष्टि बनी रहती है तो 'ब्रह्मदिन' होता है।

—: वेद :—

(१) वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

मोक्ष की प्राप्ति के लिये जिन चार साधनों की आवश्यकता है, वे इन चार वेदों में बतलाये हैं, अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान। चारों वेदों में चौबीस सहस्र मन्त्र और सात लाख अठसठ सहस्र शब्द हैं।

ऋग्वेद— सब से बड़ा है। इसमें दस मण्डल हैं और इन मण्डलों में १०२८ सूक्त हैं, जिनमें १०५५२ ऋचाएँ हैं।

यजुर्वेद—में ४० अध्याय और १६६६ मंत्र हैं।

सामवेद—में १५४३ साम-मन्त्र हैं।

अथर्ववेद—में २० काण्ड हैं, जिनमें ७६० सूक्त और लगभग ६००० ऋचाएँ हैं।

(२) वेदों का ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि

के आरम्भ में चार ऋषियों को दिया, अर्थात्—

अग्नि ऋषि को ऋग्वेद
वायु को यजुर्वेद
आदित्य को सामवेद
अङ्गिरा को अथर्ववेद

(३) इन ऋषियों ने वेदों का अन्य ऋषियों और मनुष्यों को उपदेश दिया। संसार भर की सब विद्यायें वेदों से ही निकली हैं।

(४) वेद स्वतःप्रमाण हैं। परन्तु अन्य पुस्तकें परतःप्रमाण, अर्थात् जो बात उनमें वेद के अनुकूल है वह ठीक है, जो वेद-विरुद्ध है वह ठीक नहीं।

(५) वेद लौकिक संस्कृत भाषा में नहीं हैं, किंतु देववाणी में हैं। संस्कृत भाषा वेदों की

भाषा से निकली है और अन्य सब भाषाएँ संस्कृत से।

(६) वेदों में इतिहास नहीं है। वेदों में यौगिक शब्द हैं, रूढ़ि नहीं। अर्थात् वेदों में ऐसे शब्द आए हैं जो हमको मनुष्यों के नामों जैसे ज्ञात होते हैं परन्तु उनके गुणवाचक अर्थ हैं, व्यक्तिवाचक नहीं, वे मनुष्य न थे।

(७) वेदों में राम, कृष्ण आदि कल्पित अवतारों का वर्णन नहीं है।

(८) वेदों में मुख्य तीन बातें हैं— ईश्वर के लिए भिन्न-भिन्न अवसरों के अनुकूल प्रार्थनायें, सृष्टि के नियम और मनुष्यों को उपदेश।

(९) वेदों में इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि शब्द कहीं ईश्वर के लिए आए हैं और

कहीं भौतिक पदार्थों जैसे आग, पानी आदि के लिए। इसका पता प्रकरण तथा संगति से लग सकता है।

(१०) पहिले संसार भर में वेद-मत ही था। पीछे भिन्न-भिन्न मत हो गये।

अन्य शास्त्र

आर्यसमाज वेदों को तो ईश्वरकृत मानता है परन्तु इनके अतिरिक्त नीचे लिखे ऋषियों के ग्रन्थों को भी उस अंश तक प्रामाणिक मानता है जिस अंश तक वे वेदों के अनुकूल हैं—

१—ब्राह्मण ग्रन्थ

आदि-सृष्टि से लेकर समय-समय पर वेदों की व्याख्या महर्षि, मुनि करते चले आये हैं। उन सब व्याख्याओं का संग्रह लगभग महाभारत के समय में हुआ है।

जिन ग्रन्थों में यह संग्रह हुआ है, उन्हीं को ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं, यह गणना में तो बहुत हैं, परन्तु इस समय कुछ ही मिलते हैं।

२—वेदों के अङ्ग

छः हैं-१ शिक्षा, २ कल्प, ३ निरुक्त ४ व्याकरण, ५ ज्योतिष्, ६ छंद। वेदों के जानने के लिए इनका जानना आवश्यक है।

शिक्षायें-पाणिनीय, माण्डूकी आदि कोई ६० शिक्षायें आजकल मिलती हैं।

कल्पों के नाम—सूत्र ग्रंथों में देखो। व्याकरण में प्रातिशाख्य (अर्थात् वैदिक) व्याकरण ग्रन्थ, अष्टाध्यायी और महाभाष्य मिलते हैं।

निरुक्त—पहिले अनेक 'निरुक्त' ग्रन्थ थे परन्तु अब केवल यास्काचार्य का ही मिलता है। वेद के अर्थ करने में यह परमोपयोगी ग्रंथ है।

ज्योतिष में—'सूर्यसिद्धांत' मुख्य ग्रंथ मिलता है।

३—वेदों के उपांग

वेदों के छः उपांग हैं, जिनको छः 'दर्शन' अथवा छः 'शास्त्र' भी कहते हैं। इनके नाम यह हैं—१ कपिल का 'सांख्य' २ वात्स्यायन भाष्य सहित, गौतम का 'न्याय'। ३ व्यास भाष्य सहित, पतञ्जलि का 'योग' ४ प्रशस्तपाद भाष्य सहित, कणाद का 'वैशेषिक'। ५ व्यास का 'वेदान्त' और ६ जैमिनि का 'मीमांसा' दर्शन।

४—वेदों की शाखायें

चार वेदों की ११३१ शाखाएँ इस प्रकार हैं:—ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १०००, अथर्ववेद की ६। इन शाखाओं में वेदों की व्याख्या की गई है।

५—११ उपनिषद्

जिनसे हमें ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है उन्हें 'उपनिषद्' कहते हैं। साधारण रीति से ग्यारह उपनिषदें ही प्रामाणिक समझी जाती हैं। उनके नाम यह हैं—१ ईश, २ केन, ३ कठ, ४ प्रश्न, ५ मुण्डक, ६ माण्डूक्य, ७ ऐतरेय, ८ तैत्तिरेय, ९ छांदोग्य, १० बृहदारण्यक और ११ श्वेताश्वर।

६—स्मृति ग्रन्थ

सब मिला कर ८० स्मृतियां हैं। मानव

धर्मशास्त्र वा मनुस्मृति इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है। केवल वेदानुकूल स्मृतिवचन ही माननीय हैं, अन्य नहीं।

७—सूत्र ग्रन्थ

गृह्यसूत्र—१ गोभिल-गृह्यसूत्र, २ पारस्कर-गृह्यसूत्र, ३ आश्वलायन-गृह्यसूत्र आदि।

८—आर्य-भाषा भाष्य ग्रंथ

स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका आदि।

—: यज्ञ :—

पांच यज्ञ प्रत्येक आर्य को प्रतिदिन करने चाहिएँ।

(१) ब्रह्म-यज्ञ अर्थात् ईश्वर-पूजा और वेद-पाठ।

(२) देव-यज्ञ अर्थात् हवन।

(३) भूत-यज्ञ, अर्थात् गाय, कुत्ते आदि आश्रित जीवों को भोजन।

(४) पितृ-यज्ञ, अर्थात् जीवित माता पिता का सत्कार। मरे हुए माता पिता का सत्कार करना असम्भव है इसलिये मृतकों का श्राद्ध, तर्पण नहीं करना चाहिये।

(५) अतिथि-यज्ञ अर्थात् साधु-संन्यासी आदि आए हुए का सत्कार करना।

—: संस्कार :—

प्रत्येक आर्य के सोलह संस्कार होने चाहियें—

तीन जन्म से पहिले-[१] गर्भाधान [२] पुंसवन [३] सीमन्तोन्नयन। छः बचपन

में—(१) जातकर्म (२) नामकरण (३) निष्क्रमण (४) अन्न-प्राशन (५) मुण्डन (६) कर्णवेध। दो विद्या पढ़ना आरम्भ करने के समय—(१) यज्ञोपवीत (२) वेदारम्भ। दो विद्या समाप्त करने पर—(१) समावर्त्तन (२) विवाह। तीन पिछली अवस्था में—(१) वानप्रस्थ (२) संन्यास (३) अन्त्येष्टि संस्कार।

विवाह

(१) विवाह लड़की का न्यून-से-न्यून १६ वर्ष की अवस्था में और लड़के का २५ वर्ष की अवस्था में करना चाहिये।

(२) एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह कर सकता है।

(३) अक्षतयोनि विधवा अथवा बाल-विधवा का अक्षत-वीर्य पुरुष के साथ विवाह ठीक है।

(४) क्षतयोनि विधवा का क्षतवीर्य पुरुष के साथ नियोग हो सकता है, यदि आवश्यकता हो तो।

—: आर्यसमाज का संगठन :—

(१) न्यून-से-न्यून १० सभासदों का एक समाज होता है।

(२) प्रत्येक सभासद् को अपनी आय का शतांश (१०० वां भाग) चन्दे में देना पड़ता है।

(३) शतांश चन्दा न देने वाले तथा सदाचार से न रहने वाले सभासदों से पृथक् किये जाते हैं।

(४) प्रांत के समाजों को संगठित करने के लिये प्रान्तीय-प्रतिनिधि सभाएँ हैं जिनमें प्रत्येक समाज के प्रतिनिधि जाते हैं। समाज के १० सभासदों के लिए एक प्रतिनिधि, इसके पश्चात् २० सभासदों के लिये एक प्रतिनिधि। यह प्रतिनिधि तीन वर्ष के लिये निर्वाचित किये जाते हैं।

(५) प्रतिनिधि भेजने वाले समाज को नियमपूर्वक प्रतिनिधि-सभा को समाज के सभासदों के वार्षिक शुल्क का दशांश भेजना चाहिए।

(६) प्रान्तीय प्रतिनिधि-सभा के प्रबन्ध के लिये एक अंतरंग-सभा होती है।

(७) प्रतिनिधि-सभाओं के चुने हुए सभासदों की 'सार्वदेशिक' सभा है, जिस का मुख्य स्थान दिल्ली में है।

आर्य जीवन की प्राप्ति के लिये
—: कुछ नियम :—

(१) अपने जीवन का एक लक्ष्य बना कर अपनी सारी शक्ति उसकी प्राप्ति में लगा देना।

(२) समय का सदुपयोग करना, व्यर्थ न खोना।

(३) तप का जीवन व्यतीत करना। आलस्य और प्रमाद को निकट न आने देना।

(४) आत्म-विश्वासी होना, अपने आत्मा पर भरोसा करना।

(५) सदैव आशावादी बने रहना, भूल कर भी आशा का त्याग न करना।

(६) स्वाध्याय का भी त्याग न करना। सर्वदा सत् शास्त्रों का पढ़ना और अपने जीवन का पाठ करना अति आवश्यक है।

(७) नित्यप्रति संध्या के पश्चात् ईश्वर से बल, बुद्धि, भक्ति की याचना करना।

—: आर्यसमाज का विस्तार :—

१. समस्त संसार में २००० के लगभग समाजें हैं।

२. एक हज़ार से अधिक समाजों के अपने मन्दिर हैं।

३. आर्य सभासदों की संख्या १०४८००० के लगभग है। इसमें १६४१ की जनसंख्या करने वालों के भ्रम तथा अनेक आर्यों के बिना पूछे ही किसी दूसरी श्रेणी में लिख लेने के कारण कुछ संख्या रह भी गई है। इसके अतिरिक्त मनुष्य गणना के पीछे संख्या में और भी वृद्धि हुई है।

४. १६४ सवेतन, २२८ अवेतन, १३० संन्यासी और १४ स्वतन्त्र व्याख्याता तथा भजनीक प्रचार करते हैं।

५. एक सौ से अधिक अनाथालय और मुफ्त औषधि बांटने के औषधालय हैं।

६. आर्यों के निजी अथवा स्वाधीन एक सौ से अधिक मुद्रणालय और इतने ही पुस्तक-विक्रयालय हैं।

७. लखनऊ में एक आर्यन कोपरेटिव बैंक है।

८. दो योगमण्डल तथा ३० संन्यासी पाठशालाएँ हैं।

९. हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, गुजराती, तैलेगू, बङ्गाली, कनड़ी, सिंधी आदि भिन्न २ भाषाओं के दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पचास से ऊपर समाचार-पत्र हैं।

१०. भारत तथा बाहर के देशों में प्रांत-वार आर्य प्रतिनिधि-सभा हैं, जिनका काम आर्य संस्थाओं का प्रबन्ध करना, उपदेशकों, पुस्तकों और समाचार-पत्रों द्वारा प्रचार करना तथा प्रत्येक समाज का निरीक्षण करना आदि है। प्रान्त वार उनके केन्द्र-स्थानों के नाम ये हैं :—

१ जालन्धर (पञ्जाब) २ लखनऊ (यू० पी०) ३ कलकत्ता (बंगाल-बिहार) ४ नरसिंगपुर (सी० पी०) ५ अजमेर (राजपूताना) ६ बम्बई (बम्बई), ७ हैदराबाद (निजाम राज्य), ८ हैदराबाद (सिन्ध), ९ रंगून (ब्रह्मा), १० पोर्टलोइस (मोरिशस द्वीप), ११ नेरोबी (दक्षिणी अफ्रीका) । इनके अतिरिक्त विद्या तथा आजीविका प्राप्त करने व भ्रमण के लिए गये हुए भारतीय संसार के सभी देशों तथा संयुक्त-राज्य अमरीका, कैनेडा, बृटिश गायना, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स, इराक, अरब, तिब्बत, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया और मलाया आदि में आर्यसमाजें स्थापित कर रहे हैं ।

आर्यसमाज के प्रचार के लिए
—: कुछ उपयोगी ग्रंथ :—

वैदिक धर्म का प्रचार करना हर आर्य का कर्तव्य है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्' के अनुसार तो हमें समस्त संसार को आर्य बनाना है। उठते-बैठते, चलते-फिरते, हमें धर्म-प्रचार की धुन होनी चाहिए। हमारा सौभाग्य है कि हमारे साहित्य में आर्य-समाज के प्रचार के लिये कुछ विशेष ग्रंथ छप गए हैं।

१. दयानन्द-प्रकाश—यह आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी का सम्पूर्ण प्रामाणिक जीवन-चरित्र है। लेखक स्वामी सत्यानन्द जी हैं। पृष्ठ संख्या ५६० मू. प्रचारार्थ केवल चार रुपया आठ आना।

२. आर्यसमाज क्या है?—लेखक नारायण स्वामी जी। भारतवर्ष में और विदेशों में आर्यसमाज के प्रचार के लिये सर्वोत्तम पुस्तक। मूल्य बारह आना।

३. वैदिक-धर्म-आर्यसमाज-प्रश्नोत्तरी-

ले० धर्मदेव विद्यावाचस्पति। मूल्य ।।) आना

यदि आप आर्यसमाज का विस्तार चाहते हैं तो इन पुस्तकों को घर-घर में पहुंचा दें। जिस किसी के भी हाथ में ये पुस्तकें पहुंचेंगी, वह निश्चय ही पक्का वैदिक धर्मी बन जावेगा।

ऊपर लिखी सब पुस्तकें हमसे (म० राजपाल एण्ड संज़, आर्य पुस्तकालय, नई सड़क, देहली से) मिल सकती हैं।

—: आर्यसमाज का काम :—

(१) शिक्षा का कार्य—आर्य-समाज के अधीन समस्त भारतवर्ष में इस समय ४७ कालेज, २६० हाई स्कूल, १५० अंग्रेजी मिडिल-स्कूल, २०० प्रायमरी स्कूल १४२ रात्रि स्कूल, ५३ गुरुकुल, ३ कन्या-गुरुकुल, ६ कन्या कालेज, ७०० कन्या-पाठशालाएँ हैं। छोटे-बड़े सब मिला कर ६६३ विद्यालय हैं जिनमें ६६०६० विद्यार्थी पढ़ते हैं। ३६८० अध्यापक हैं और अनुमानतः ३० लाख वार्षिक व्यय होता है। इन विद्यालयों के भवनों की लागत ८१ लाख से कुछ अधिक है। बड़े-बड़े विद्यालयों के नाम यह हैं—१ डी. ए. वी.

कालिज जालन्धर, २ गुरुकुल कांगड़ी, ३ गुरुकुल वृन्दावन, ४ कन्या गुरुकुल देहरादून, ५ कन्या महाविद्यालय जालन्धर ६ डी. ए वी कालिज देहरादून, ७ डी. ए. वी. कालिज कानपुर ८ महाविद्यालय ज्वालापुर, इत्यादि ।

इनके अतिरिक्त ३०० संस्कृत पाठशालाएँ और ७०० कन्या पाठशाला भी हैं ।

(२) अनाथालय—जिनमें अनाथ बच्चे पाले जाते हैं, जैसे अनाथालय फिरोज़पुर, अजमेर, आगरा, बरेली, लखनऊ, देहली आदि । ५० अनाथालय भारत में विद्यमान् हैं ।

(३) ५१ विधवा-आश्रम जिनके द्वारा विधवाओं का विवाह होता है । सैंकड़ों

विधवायें इस प्रकार पतित होने से बचा ली जाती हैं।

(४) दलितों के उद्धार के लिये अनेकों सभायें हैं।

(५) शुद्धि-सभा—इसके द्वारा उन भाइयों की, जो कभी मुसलमान अथवा ईसाई हो गये हैं, यदि वे चाहें तो शुद्धि की जाती है और उनको वैदिक धर्म में लिया जाता है।

(६) बाल-विवाह और बूढ़ों का विवाह रोकने में आर्यसमाज ने बड़ा काम किया है।

(७) सच्ची जीव-रक्षा की ओर समाज ने लोगों का बहुत ध्यान आकर्षित किया है। सहस्रों लोग जो पहले मांस और मद्य का प्रयोग करते थे, अब इन बुरी

वस्तुओं को छोड़कर पवित्र आहार ग्रहण करने लगे हैं।

(८) हवन की प्रथा बन्द हो गई थी, वह पुनर्जीवित की गई है।

(९) वेद पढ़ने का अधिकार स्त्री, शूद्र आदि सभी को प्राप्त है और वेदों का प्रचार बढ़ता जाता है।

आइये और आर्यसमाज के सभासद् बनिये क्योंकि इसी से देश का कल्याण होगा।

-: ऋषि दयानन्द-कृत ग्रन्थ :-

आर्य स्त्री-पुरुषों को स्वाध्याय के लिये, वेदों के पश्चात्, सब से उच्च पदवी ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को देनी चाहिए और प्रयत्न करना चाहिये कि ऋषि के ग्रन्थ उन्हीं की भाषा में पढ़े जावें। इन्हीं ग्रन्थों का

प्रचार कर अन्य पुस्तकों को दूसरी कोटि में रक्खें।

१. आर्य्याभिविनय—(सं० १९३२) ऋग्वेद और यजुर्वेद के १०८ मन्त्रों की सुन्दर व्याख्या है। इसी ढंग पर स्वामी जी स्वयं प्रार्थना करते थे।

२. सत्यार्थ प्रकाश—(आर्य-भाषा) सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी का सं० १९३२ का छपवाया हुआ सब से पहला बड़ा ग्रन्थ है। पहले संस्करण में अनेक कारणों से कई भूलें रह गई थीं। संवत् १९३९ में इसका फिर संशोधन करके स्वामी जी ने छपवाया था। इस ग्रंथ ने भारत के धार्मिक जगत् में हलचल मचा दी है। इस पुस्तक को पढ़कर जहाँ मनुष्य को अपने धर्म का वास्तविक

ज्ञान हो जाता है, वहाँ संसार के अन्य मत-मतान्तरों का भी बोध हो जाता है। यह एक अद्वितीय पुस्तक है। इसके पाठ से किसी को भी, चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला क्यों न हो, वंचित न रहना चाहिए।

'सत्यार्थ प्रकाश' के पढ़ने की रीति

संस्कृत जानने वाले विद्वान जैसे चाहें पढ़कर प्रत्येक बात समझ सकते हैं। अन्य साधारण भाषा जानने वाले इसे पहले इस प्रकार पढ़ें।

(१) भूमिका (२) दूसरा समुल्लास (३) दसवाँ (४) ग्यारहवाँ (५) चौथा (६) पांचवाँ (७) छठा (८) तेरहवां (९) चौदहवां (१०) तीसरा (११) सातवां (१२) आठवां (१३) बारहवां (१४) नवां

और तब पहला समुल्लास। ग्रंथ को बार-बार पढ़ना चाहिये। स्वर्गीय पं० गुरुदत्त जी कहा करते थे कि मैंने इसे १८ बार पढ़ा है और जब भी पढ़ता हूं तब ही नई-नई बातें ज्ञात होती हैं।

३. काशी शास्त्रार्थ-(सं० १९२६ वि०)
४. सत्यधर्म विचार—(सं० १९३५)
५. पंचमहायज्ञ-विधि—(सं० १९३५)
६. आर्योद्देश्य रत्नमाला-(सं० १९३६)
७. संस्कार विधि—(सं० १९३२)

यह ग्रंथ पहले-पहल ऋषि ने बम्बई में छपवाया था। फिर सं० १९४० में इस का संशोधन किया गया। इसमें मनुष्य जीवन का समय-विभाग (प्रोग्राम) लिखा है और बतलाया गया है कि सोलह संस्कारों के करने ही से मनुष्य

सम्पूर्ण मनुष्य बन सकता है।

८ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका — (संवत् १९३६) यह चारों वेदों के भाष्यों की भूमिका है।

९. ऋग्वेद-भाष्य—(सं० १९३५-४०)

१०. यजुर्वेद-भाष्य—(सं० १९३४-३९)

११. यजुर्वेद भाषाभाष्य—

१२. व्यवहार-भानु (सं० १९२९)

१३. वेदविरुद्धमतखण्डन—(सं० १९३४)

१४. नारायणस्वामी मतखंडन-(सं० १९३१)

१५. भ्रमोच्छेदन (सं० १९३७)

१६. भ्रान्तिनिवारण—(सं० १९३७)

१७. गोकरुणानिधि— सं० १९३६-३९)

१८. वेदांग-प्रकाश—(सं० १९३६)

१९. विवाह-पद्धति—

२०. संस्कृत वाक्य-प्रबोध—(संवत १६३६)

२१. वेदभाष्य का नमूना

२२. अष्टाध्यायी-भाष्य

२३. प्रतिमा-पूजन-विचार—(१६३६)

२४. वेदान्त ध्वान्ति-निवारण-(संवत १६३३)

२५. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

सोलह संस्कार और उनका

—: समय :—

वैदिक संस्कारों के करने से माता-पिता जैसी उत्तम सन्तान बनाना चाहें

बना सकते हैं। समर्थ गुरु रामदास तथा शिवाजी की माता ने ही 'शिवाजी' को इतना शूरवीर बनाया था। 'नैपोलियन' को भी इतना वीर, धीर, गम्भीर और संसार-विजेता उसकी माता ने ही बनाया था! 'एडीसन' को विज्ञान-वेत्ता उसकी माता ने ही बनाया था। 'अभिमन्यु' और 'लव', 'कुश' को युद्ध-विद्या, शस्त्र-प्रयोग गर्भ में ही सिखाये गए थे।

१—गर्भाधान—श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिए यह संस्कार किया जाता है। युवा स्त्री-पुरुष को उत्तम सन्तान की इच्छा हो तो विशेष तत्परता से प्रसन्नता-पूर्वक गर्भाधान करें, नहीं तो सन्तान

कभी उत्तम उत्पन्न न होगी। गर्भाधान का समय रजोदर्शन के दिन से सोलहवीं रात्रि तक है। उनमें प्रथम चार रात्रि तथा पर्व-रात्रि वर्जित हैं।

२–पुंसवन संस्कार—जब गर्भ की स्थिति का ज्ञान हो जाय, तब दूसरे वा तीसरे महीने गर्भ की रक्षा के लिए यह संस्कार किया जाता है। इसमें दोनों स्त्री-पुरुष प्रतिज्ञा करते हैं कि वह आज से कोई ऐसा कार्य न करेंगे, जिससे गर्भ गिरने का भय हो।

३–सीमन्तोन्नयन—यह संस्कार गर्भ के चौथे मास में बच्चे की मानसिक शक्तियों की वृद्धि के लिए किया जाता है। इसमें ऐसे साधन किये जाते हैं, जिनसे स्त्री का मन सन्तुष्ट रहे।

४-जातकर्म—यह संस्कार बालक के जन्म लेते ही किया जाता है। बालक का पिता उसकी जिह्वा पर सोने की सलाई के द्वारा 'घी' और 'शहद' से 'ओ३म्' लिखता है और उसके कान में 'त्वं वेदोऽसि' कहता है।

५-नामकरण—जन्म के ग्यारहवें दिन अथवा १०१ वें दिन वा दूसरे वर्ष के आरम्भ में यह संस्कार किया जाता है। इस में बालक का नाम रखा जाता है। नाम प्रिय तथा सार्थक रखना चाहिये।

६-निष्क्रमण—यह संस्कार जन्म से चौथे महीने में, उसी तिथि में जिसमें बालक का जन्म हुआ हो, किया जाता है। इसका उद्देश्य बालक को उद्यान की शुद्ध वायु के सेवन और सृष्टि के अवलोकन का

प्रथम शिक्षण है।

७—अन्नप्राशन—छठे व आठवें महीने में जब बालक की शक्ति अन्न पचाने की हो जावे तो यह संस्कार किया जाता है।

८—चूड़ाकर्म—अथवा मुण्डन संस्कार—पहले अथवा तीसरे वर्ष में बालक के बाल काटने के लिये किया जाता है।

९—कर्णवेध—कई रोगों को दूर करने के लिए बालक के कान बींधे जाते हैं। यह संस्कार तीसरे या पांचवें वर्ष में करना चाहिये।

१०—उपनयन——जन्म वर्ष से आठवें वर्ष में इस संस्कार से लड़के व लड़की को यज्ञोपवीत पहनाया जाता है।

यज्ञोपवीत का मंत्र

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं,
प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं,
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

११-वेदारम्भ-उपनयन संस्कार के दिन वा उससे एक वर्ष के भीतर गुरुकुल में वेदों का आरम्भ गायत्री मंत्र से किया जाता है।

१२-समावर्तन-जब ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति कर वेद-शास्त्रों के पढ़ने के पश्चात् गुरुकुल छोड़कर अपने घर ब्रह्मचारी जाता है उस समय यह संस्कार किया जाता है।

१३-विवाह—विद्या-समाप्ति के पश्चात् जब लड़की लड़का घर जावे तो यह संस्कार किया जाता है। सब प्रकार से योग्य लड़का लड़की का ही विवाह करना चहिये।

१४—वानप्रस्थ—का समय ५० वर्ष के उपरांत है। जब घर में पुत्र का भी पुत्र [पोता] हो जावे तब गृहस्थ के धन्धों में फँसे रहना अधर्म है। उसी समय यह संस्कार किया जाता है।

१५—संन्यास—वानप्रस्थी बन में रहकर जब सब इन्द्रियों को जीत ले, किसी में मोह और शोक न रहे, तब केवल परोपकार के हेतु संन्यास-आश्रम में प्रवेश के लिये यह संस्कार किया जाता है।

१६—अन्त्येष्टि संस्कार— मनुष्य शरीर का यह अन्तिम संस्कार है जो मरने के पश्चात् शरीर को जलाकर किया जाता है।

★

आर्यों के यज्ञ तथा पर्व

१. ब्रह्मयज्ञ प्रतिदिन सायं-प्रातः ।

२. देवयज्ञ ,, ,, ,,

३. बलिवैश्वदेव-यज्ञ ,, ,, ,,

४. पितृयज्ञ ,, ,, ,,

५. अतिथियज्ञ ,, ,, ,,

६. दर्शेष्टि [कृष्ण-पाक्षिक यज्ञ] प्रति-अमावस्या ।

७. पौर्णमास्येष्टि [शुक्ल-पाक्षिक यज्ञ] प्रतिपूर्णमासी ।

८. संवत्सरेष्टि [नये वर्ष का यज्ञ] चैत्र शुक्ल १ ।

९. दयानन्द-महायज्ञ [आर्यसमाज का स्थापना-दिवस] चैत्रशुक्ला ५।

१०. वैशाखी [सौर वर्ष का आरम्भिक दिन] प्रथम वैशाख।

११. रामनवमी [राम का जन्मदिन] चैत्रशुदि ९।

१२. बसन्त नवान्नेष्टि [नये अन्न का यज्ञ] वैशाख मीन, मेष के सूर्य में।

१३. वरुण प्रघास चातुर्मास्येष्टि, आषाढ़।

१४. श्रावणी, श्रावण पूर्णमासी।

१५. श्रावण कर्मयज्ञ [रक्षा-बन्धन] श्रावण-पूर्णमासी।

१६. कृष्णाष्टमी [कृष्ण-जन्मदिन] भाद्रपद कृष्ण ८।

१७. विरजानन्द उत्सव, आश्विनकृष्णा।

१८. विजय-दशमी [दशहरा] आश्विन शुक्ल १० ।

१९. शरद नवान्नेष्टि—नये अन्न का यज्ञ कार्तिक कन्या तुला के सूर्य में ।

२०. दयानन्दोत्सव [दीपावली] कार्तिक अमावस्या ।

२१. साकमेध-चातुर्मास्येष्टि—कार्तिक पूर्णमासी ।

२२. उत्सर्गकर्म [यज्ञ] पौषरोहिणीनक्षत्र

२३. लोहड़ी—पौष मांसात ।

२४. संक्रान्ति [माघी] प्रथम माघ ।

२५. वसंत पंचमी [हकीक़त बलिदान] माघ शुक्ल ५ ।

२६. दयानन्द बोधोत्सव [शिवरात्रि] फाल्गुण कृष्ण १४ ।

२७. वीर उत्सव [लेखराम बलिदान]

२८. होली, फाल्गुण कृष्ण १३-१४-१५ ।

२९. वैश्वदेव चातुर्मास्येष्टि, फाल्गुण-पूर्णमासी ।
३०. गुरुदत्त उत्सव, चैत्र कृष्णा १४ ।
३१. श्रद्धानंद बलिदान, पौषबदि १४ ।
३२. राजपाल बलिदान, चैत्रबदि १२ ।

—: आर्य्य-पर्व-पद्धति :—

निम्नलिखित त्यौहार और पर्व आर्य पुरुषों को मनाने चाहियें । यह पर्व आर्य सार्वदेशिक सभा की नियत 'जन्मशताब्दि समिति' ने ऋषि दयानन्द शताब्दि के शुभ अवसर पर स्वीकार किये थे ।

(१) नवसंवत्सरोसत्व

नये बर्ष का यज्ञ, चैत्र शुदि १ । नवसंवत्सरारम्भोत्सव संसार की प्रायः सब सभ्य जातियों में मनाया जाता है संवत्सर का प्रारम्भ आदि-सृष्टि

में शुक्लपक्ष के प्रथम दिन प्रतिपदा को प्रथम सूर्योदय होने पर हुआ था। नूतन वर्ष के स्वागतार्थ आर्य जाति में आनन्दानुभव के साथ यज्ञादि धर्मानुष्ठान-पूर्वक उत्सव के मनाने की परिपाटि है।

[२] आर्य-समाज का स्थापना-दिवस

दयामूर्ति ऋषि दयानन्द ने आर्य जाति तथा वैदिक धर्म के पुनरुद्धारार्थ और संसार के उपकारार्थ भारत की प्रसिद्ध नगरी बम्बई में शुभ तिथि चैत्र शुदि ५ संवत् १९३२ वि० शनिवार तदनुसार १० एप्रिल सन् १८७५ ई० को प्रथम आर्य-समाज की स्थापना की। अतः इस तिथि पर सब आर्य समाजों को उत्सव करने चाहिए। संसार के उपकार

और देश-देशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार के साधनों पर विचार करके अपने अन्दर नया जीवन धारण करना चाहिये।

(३) रामनवमी (श्री राम-जन्मदिन)

चैत्र शुदि नवमी

प्राचीन भारत के धर्मप्राण तथा गौरव-सर्वस्व महात्मा श्री रामचन्द्र जी का आदर्श चरित्र आर्य जाति के लिये अनुकरणीय तथा शिक्षाप्रद है। निष्काम कर्म वैदिक धर्म का सिद्धान्त है और इसका पूर्णरूप से पालन केवल प्रातः-स्मरणीय श्री राम द्वारा ही हुआ है। उन्हीं पवित्र-नाम राम के जन्मदिन की शुभ तिथि चैत्र शुदि नवमी है। इस दिन मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के चरित्र

के अध्ययन वा स्वाध्याय के लिये वाल्मीकि रामायण की कथा होनी चाहिये। प्रत्येक आर्य को उनके पथ पर चलने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये।

(४) हरितृतीया [वर्षा ऋतु उत्सव]

श्रावण शुदि तृतीया

स्थलचर, जलचर तथा नभचर, सभी प्राणियों का जीवन जल पर निर्भर है। वर्षाऋतु का शुभ आगमन होते ही प्रकृति का दृश्य बदल जाता है। चारों ओर हरियावल ही हरियावल नेत्रों का सत्कार करती है। दादुरध्वनि और मयूर की कूक दशों दिशाओं को मुखरित कर देती है, प्रकृति में आनन्द ही आनन्द का एकाधिपत्य व्याप जाता है। ऐसे समय

में सहृदय भारतवासी भला कैसे उदासीन रह सकते हैं? वह भी प्रकृति के मधुर-स्वर में अपना स्वर मिलाने के लिये वर्षा-उत्सव मनाते हैं।

(५) श्रावणी उपाकर्म

श्रावण पूर्णमासी

शरीर की स्थिति और उन्नति जिस प्रकार अन्न से होती है, इसी प्रकार सारे शरीर के राजा मन का उत्कर्ष और शिक्षण स्वाध्याय से होता है। अतएव स्वाध्याय मनुष्य के लिये अन्नाहार के समान ही आवश्यक और अनिवार्य है। प्राचीन काल में वैसे तो लोग नित्य ही वेदपाठ में रत रहते थे, किन्तु वर्षाऋतु में वेदपाठ, धर्मोपदेश, और ज्ञानचर्चा का

विशेष आयोजन किया जाता था। उसी दिन पहले यज्ञोपवीत बदले जाते थे। इस विशेष वेदोपदेश का प्रारंभ श्रावण पूर्णिमा या श्रावण शुदि पंचमी को होता था!

(६) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

भाद्रपद बदि अष्टम

इस समय भारत के शृंखलाबद्ध इतिहास की अप्राप्यता में यदि भारतीय अपना मस्तक समुन्नत जातियों के समक्ष ऊँचा उठाकर चल सकते हैं तो भगवान् कृष्ण की दिव्य वाणी गीता की विराजमानता से। ऐसे अद्वितीय योगीराज का जन्मोत्सव मनाने के लिए किस भारतीय का हृदय उत्सुक न होगा? वास्तव में कृष्ण भारत की आत्मा थे। उनका

जन्म आज से पांच हज़ार वर्ष पूर्व भाद्रपद बदि अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में मथुरा में हुआ था।

(७) विजय-दशमी

आश्विन शुदि दशमी

प्राय: देखने में आता है कि विजय-दशमी रावणवध और श्री रामचन्द्र की लंका विजय की तिथि समझ कर मनाई जाती है, परन्तु वास्तव में विजय घटना का इस उत्सव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। प्राचीन काल में इसका शुद्ध स्वरूप यह था कि इस दिन राजागण अपनी सहस्र सेना सहित सजधज के, विजय-यात्रा का नियमबद्ध उपक्रम करते थे। वैश्य भी अपने वाहनों में बैठ कर इसी प्रकार व्यापार-यात्रा का प्रारम्भसूचक अनुष्ठान

करते थे। आजकल इसकी पद्धति यह होनी चाहिये कि बस्ती के बाहर कुछ दूर तक यात्रा की जाय। इस अवसर पर खड्ग का अभ्यास, बाणों से लक्ष्यवेध तथा गतका आदि शस्त्राभ्यास के कौतुकों का प्रदर्शन होना चाहिए। बल-हीन आर्यजाति में इस समय शक्ति-संचय की बड़ी आवश्यकता है।

(८) श्रीमद्दयानन्द बोधोत्सव

दीपावली-कार्तिक अमावस्या

दीपावली के विषय में भी विजय-दशमी के समान एक कल्पित गाथा चल पड़ी है कि श्री रामचन्द्र जी के बनवास से लौटकर अयोध्या में पहुंचने पर उनकी प्रजा ने उस हर्षोत्सव के उपलक्ष में

आज के दिन दीपावली की थी। वास्तव में बात यह है कि आज के दिन से शीत का शासन आरम्भ होता है। भावी शीत के निवारण के लिये उष्ण-वस्त्रों का प्रबन्ध करना होता है, वायु-मण्डल का संशोधन हवन यज्ञ से तथा घरबार की स्वच्छता लिपाई-पुताई से की जाती है। इसी समय श्रावण की उपज (फसल) का आगमन होता है, इसी फसल के स्वागत के लिए दीपमाला का उत्सव बनाया है। किन्तु इस महारात्री का महत्व एक घटना ने और भी बढ़ा दिया है। इसी दिन सायंकाल विक्रमी सं० १९४० तद्-नुसार ३० अक्तूबर सन् १८८३ ई० मंगलवार को १९ वीं शताब्दी के अद्वि-तीय वेदोद्धारक और वर्तमान आर्य्य-

समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की उच्च आत्मा ने इस नश्वर शरीर को छोड़ा था। अतः आज के दिन ऋषि के गुणानुवाद गाये जाने चाहिएँ। उनके पवित्र चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इस दिन चार आने प्रति जन के हिसाब से दान निकाल कर वेद-प्रचार में लगाना चाहिए।

(९) संक्रान्ति

यह पर्व चिरकाल से चला आता है। सभी प्रान्तों में यह एक जैसा मनाया जाता है। इसी दिन शीत अपने यौवन पर होता है। अतः स्थान २ पर हवन यज्ञ होने चाहियें, तिल के लड्डू बांटे जायें, और अपनी सामर्थ्य के अनुसार कम्बल आदि दीन दुखियों को दान दिए जायें।

(१०) वसन्त पंचमी

माघ शुदि पंचमी

यह समय बहुत सुहावना होता है। सारी प्रकृति ने बसन्ती बाना पहन लिया है। खेतों में जहाँ तक दृष्टि दौड़ायें हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। क्या पशु, क्या पक्षी और क्या मनुष्य सब का हृदय प्रसन्नता से खिलने लगता है। इस समय आमोद-प्रमोद और राग रंग की सूझती है, इस दिन पीताम्बर (पीले वस्त्र) धारण कर हवन यज्ञ के पश्चात् बसन्ती मोहन भोग व हलवे का भोजन करें। समूहरूप से सम्मिलित होकर उपवन कुसुमोद्यान में भ्रमण करें तथा बालकों की क्रीड़ा की प्रदर्शनी करें, जिससे कि वसन्तोत्सव की उत्कर्ष वृद्धि हो।

(११) सीताष्टमी

फाल्गुन बदि अष्टमी

जब तक संसार में नारी जाति का अस्तित्व रहेगा, तब तक मर्यादा-पुरुषोत्तम महाराज रामचन्द्र की धर्मपत्नी सती-शिरोमणि, पतिपरायणा श्रीसीता जी की कीर्ति आसूर्यचन्द्र अचल, अमर बनी रहेगी। क्या सरलता में, क्या सुशीलता में, क्या सुन्दरता में, सभी विषयों में सीतादेवी अद्वितीया थीं। उनकी पावनी जीवनी प्रत्येक भारतीय ललना के लिए आदर्श रूप है। इस पर्व में देवियों को विशेष भाग लेना चाहिए। पर्व के आनन्द-वर्धनार्थ कन्याओं की बालोद्या-नादि मनोरंजक क्रीड़ाओं की आयोजना होनी चाहिए।

(१२) दयानन्द-बोधोत्सव

शिवरात्रि

संसार की साधारण घटनायें महा-पुरुषों के जीवन में महान् परिवर्तन उत्पन्न कर देती हैं। शिवरात्रि की साधारण घटना ही दयानन्द के जीवन-भर मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध विकट संग्राम की आदिकर्त्री थी। इसलिये इसको आर्यसमाज के इतिहास में दयानन्द-बोधरात्रि कहते हैं। इस रात्रि को प्रत्येक आर्य्य के घर में ऋषि दयानन्द के गुणों का कीर्तन होना चाहिए। इस रात्रि को यदि हो सके तो जागरण कर प्रभु का जाप करना चाहिए, अथवा श्री स्वामी जी का जीवन-चरित्र पढ़ना चाहिए।

(१३) वीर-उत्सव [लेखराम बलिदान]

फाल्गुन शुदि तृतीया

आर्य्यसामाजिक जगत् में भला कोई ऐसा भी व्यक्ति होगा, जो धर्म-वीर पं० लेखराम 'आर्य्य-पथिक' के नाम और काम को न जानता हो? पं० लेखराम भावुकता और धार्मिक श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति थे। वे अत्यन्त त्यागी, सरल-स्वभाव, प्रतिज्ञा-पालन के पक्के, तेजस्वी, वैदिक-सिद्धान्तों के अटल विश्वासी, सुलेखक तथा आर्यप्रचारक थे। मोहम्मदी लोग उनसे बहुत द्वेष रखते थे, उन्होंने छल-कपट से उन्हें मारना चाहा। समय पाकर एक मुसलमान नवयुवक ने उनके पेट में कटार घोंप दी, जिससे फाल्गुन शुदि ३, संवत् १९५३ को रात्री के दो

बजे उन्होंने अपने नश्वर शरीर को वैदिक धर्म पर बलिदान कर दिया। हमें चाहिये कि इस पर्व पर धर्मवीर के अन्तिम वाक्य "आर्य्य-समाज का लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए", सदा ध्यान में रख कर आर्य्य-समाज के साहित्य की उन्नति करते रहें।

(१४) वासंती [आषाढ़ी]

नवशस्येष्टि होली फाल्गुन पूर्णिमा

आषाढ़ की फसल भारत की सब फसलों में श्रेष्ठ है। ऐसी जीवनाधार सर्वपालक शस्य के आगमन पर भारत-वासियों का आनन्द-उत्सव और रङ्ग-रलियां मनाना स्वाभाविक ही है। यह पर्व प्रत्येक हिन्दू के घर, भारतवर्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक, बड़े समारोह से

मनाया जाता है। इस पर्व पर सब लोग ऊँच-नीच, छुटाई-बड़ाई का विचार छोड़ स्वच्छ हृदय से आपस में मिलते थे। इतर आदि सुगन्धित द्रव्यों को परस्पर उपहार रूप से व्यवहार में लाते थे, परन्तु उसके स्थान पर आज रंग बिखेरने की कुप्रथा चल पड़ी है। अतः आर्य पुरुषों को इस कुरीति को दूर करने का यत्न करना चाहिये और सभ्य रीति से इस पर्व को मनाना चाहिये। हो सके तो अपने कपड़े परमात्मा की भक्ति के रंग में रंगने चाहियें जिससे आत्मा पर भी प्रभु-प्रेम का रंग चढ़ सके।

(१५) श्रद्धानन्द बलिदान दिवस

पौष बदि १४

स्वामी श्रद्धानन्द जी आर्य समाज के

निमाताओं में से एक थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्यसमाज के वैदिक आदर्श को क्रियात्मक रूप देने के लिए सर्वस्व त्याग दिया। स्वयं अपना जीवन वैदिक आदर्श के अनुसार चार आश्रमों में क्रमशः बिताया। धर्म-प्रचार, सत्य-प्रचार तथा कर्मशीलता की मूर्ति थे। पौष बदि १४ (२३ दिसम्बर १६२६) को आप दिल्ली में रोगार्त थे। एक मुसलमान धर्म-चर्चा के बहाने आया। अवसर देखकर स्वामी जी को पिस्तौल का लक्ष्य बना दिया। घातक पकड़ लिया गया। उसे न्यायालय से फांसी की आज्ञा मिली। अस्तु! स्वामी जी का अनुकरण करने के लिये हमें संकल्प करना चाहिये।

(२६) राजपाल-बलिदान-द्वादशी

चैत बदि १२

म० राजपाल जी ने 'आर्य पुस्तकालय' व 'सरस्वती आश्रम' स्थापित कर आर्यजगत् का बड़ा उपकार किया—वैदिक साहित्य प्रकाशित किया। इसी प्रकाशन-विभाग द्वारा आपने 'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तक प्रकाशित की जिस पर मुसलमानों ने आपत्ति की। फल-स्वरूप महाशय जी पर २६ दिसम्बर १९२७ ई० को खुदाबख्श नामक मुसलमान युबक ने प्रथम घातक प्रहार किया।

मुसलमानों की प्यास इससे भी न बुझी। इल्मदीन नामक एक मुसलमान ने

६ अप्रैल १९२९ को २ बजे दोपहर को महाशय जी पर पुनः आक्रमण किया जो उनकी मृत्यु का कारण बना। घातक पकड़ा गया। उसे न्यायालय से फांसी की आज्ञा मिली। महाशय जी शहीद हो गए, उनका नाम आर्य जगत् में अमर हो गया। परन्तु मुसलमानों को यह न समझना चाहिये कि महाशय जी की मृत्यु के साथ वैदिक साहित्य का प्रकाशन और आर्य समाज का प्रचार बन्द हो जायगा। महाशय जी का स्थापित किया हुआ "आर्य पुस्तकालय" (नई सड़क, दिल्ली) अब भी पहले की तरह उच्च कोटि का साहित्य निकाल कर वैदिक धर्म की सेवा कर रहा है। आर्य बन्धुओं को इसे अपना पुस्तकालय समझना चाहिये और इसको यथासम्भव सहयोग देना चाहिये।

-:आर्यों के सामाजिक धर्म:-

१ समाज में जाना, दान व चन्दा देना, सुशीलता से बैठना। २. प्रत्येक कार्य में उत्साह से भाग लेना। ३. एक दूसरे के दुःख-सुख में सम्मिलित होना। ४. अपनी बिरादरी बनाना। ५. अपने संबन्ध आर्यों से रखने। ६. बालकों का आर्यकुमार-सभाओं से सम्बन्ध जोड़ना। ७. विवाहादि पौराणिक भाई-बन्धुओं के जाल से निकल कर करना। ८. दूसरों की सहायता करना। ९. अपने संन्यासियों, उपदेशकों, पुरोहितों का मान करना। १० आर्यसमाज के पत्रों को प्रोत्साहित करना। ११. अपने बालकों को शिल्प-विद्या सिखाना तथा गुरुकुल और कन्या-गुरुकुल में भेजना।

प्रातःकाल के भजन

भजन नं० १

१—जय जय पिता परम आनन्द दाता।
जगदादि कारण, मुक्ति प्रदाता॥
२—अनंत और अनादि विशेषण हैं तेरे।
सृष्टि का स्रष्टा तू धर्ता संहरता॥
३—सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तू है स्थूल इतना।
कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता॥
४—मैं लालित वा पालित हूं पितृस्नेह का।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझ से ताता॥
५—करो शुद्ध निर्मल मेरी आत्मा को।
करूँ मैं विनय नित्य सायं व प्रातः॥
६—मिटाओ मेरे भय आवागमन के।
फिरूँ न जन्म पाता और बिलबिलाता॥
७— बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता॥

८–'अमी' रस पिलाओ कृपा करके मुझको।
रहूं सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता ॥

भजन नं० २

१—हुआ ध्यान में ईश्वर के जो मगन,
उसे कोई क्लेश लगा न रहा ॥
जब ज्ञान की गंगा में नहाया,
तो मन में मैल ज़रा न रहा ॥१॥
२—परमात्मा को जब आत्मा ने,
लिया देख ज्ञान की आँखों से।
प्रकाश हुआ मन में उसके,
कोई उससे भेद छिपा न रहा ॥२॥
३—पुरुषार्थ ही इस दुनिया में,
हर कामना पूरी करता है।
मनचाहा सुख उसने पाया,
जो आलसी बन के पड़ा न रहा ॥३॥

४—दुखदायक हैं सब शत्रु हैं,
विषय हैं जितने दुनियां के।
वह पार हुआ भवसागर से,
जो जाल में इनके फँसा न रहा ॥४॥
५—यह वेद विरुद्ध जब मत फैले,
पत्थर की पूजा जारी हुई।
जब वेद की विद्या लोप हुई,
तो ज्ञान का पांव जमा न रहा ॥५॥
६—यहाँ बड़े-बड़े महाराजा हुए,
बलवान् हुए विद्वान् हुए।
पर मौत के पंजे से 'केवल'
कोई रचना में आके बचा न रहा ॥६॥

★

ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या

१–संध्या शब्द का अर्थ—

"संध्या" शब्द का अर्थ "संध्यायन्ति संधीयते वा परब्रह्म यस्यां सा संध्या" अर्थात् भली प्रकार ध्यान करते हैं, वा किया जाय परमेश्वर का जिसमें वह 'संध्या' है। अतः रात और दिन के संयोग के समय दोनों संध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।

२–सन्ध्या सम्बन्धी शास्त्रोपदेश

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे।

हम सब उस सौम्य-स्वभाव, राजाधिराज ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति

करते हुए उपासना करें ॥१॥

योऽन्यां देवतामुपास्ते यथा पशुरेवछं स देवानाम् ॥२॥ श० १४।४॥

जो जन परमेश्वर को छोड़कर किसी और की उपासना करता है, वह विद्वानों की दृष्टि में पशु ही है।

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः संध्यामुपासीत ॥३॥ षड्विंशब्राह्मण ४।५

इसलिए मनुष्य प्रातः तथा सायं दोनों समय सन्ध्या किया करे ॥३॥

उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥

तै० २।२२

सूर्य के उदय तथा अस्त होते समय प्रभु

का चिन्तन करने वाला बुद्धिमान् मनुष्य सकल प्रकार के कल्याण को प्राप्त करता है ॥४॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥६॥

जो जन प्रातः तथा सायंकाल सन्ध्या नहीं करता वह शूद्र के समान है । वह सब प्रकार के कर्मों से बहिष्कृत करने योग्य है । अतः—

सन्ध्यां सकृशोऽहरहरुपासीत ॥६॥

बृहज्जाबालोपनिषद् ७।८॥

शुद्ध, पवित्र, एकान्त स्थान में विधिपूर्वक आसन लगाकर प्रतिदिन दोनों समय संध्या करनी चाहिये । उस समय मन की

वृत्तियों को चारों ओर से हटाकर प्रभु गुण-गान में लगावें।

३. संध्या क्यों करनी चाहिए ?

जैसे शरीर के लिए भोजन आवश्यक है वैसे ही अन्तःकरण की शुद्धि, आत्मिक बल, तथा ईश्वर-ज्ञान के लिये सन्ध्या का अनुष्ठान अत्यावश्यक है।

चित्त की स्थिरता, मन की विषय-उपरामता, आत्मोन्नत्ति, मिथ्या अहङ्कार या अभिमान के नाश, बुद्धि की सूक्ष्मता तथा तीव्रता के लिए सन्ध्यारूपी ज्ञानगंगा में स्नान अवश्यमेव करना चाहिये।

४. सन्ध्या कितने काल करें ?

संध्या केवल सायं वा प्रातः दो ही काल करनी चाहिए।

५. सन्ध्या किस समय करनी चाहिए ?

सन्ध्या प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व, सायंकाल सूर्यास्त होने पर करनी चाहिए। सन्ध्या में अपनी इच्छा, शक्ति, भक्ति, प्रेम तथा श्रद्धानुसार ही समय दिया जावेगा।

६. आसन आदि कैसा हो ?

एकान्त, शुद्ध, पवित्र स्थान पर नीरोगता तथा बल के देने वाला आसन लगावें। हिलें-जुलें नहीं। हाथ आदि कुछ न हिलावें। यदि मक्खी मच्छर, आदि के बैठने का डर हो तो पतला सा कपड़ा ऊपर ले लेवें। कृष्ण भगवान् कहते हैं—"नीचे चौकी, ऊपर दर्भासन, उसके ऊपर ऊनी आसन और उस पर निर्मल श्वेत सूती चादर होनी चाहिये। सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी तीनों एक सीध में रहें।

७. सन्ध्या समय मुँह किधर करें ?

प्रातःकाल पूर्व तथा सायंकाल पश्चिम की ओर, अथवा देशकाल के अनुसार जिधर चाहें, कर लें ।

८. सन्ध्या समय मन के विचार ।

"मैं पवित्र स्थान को जा रहा हूं । मेरे पास कोई अपवित्र विचार नहीं रहेगा । अब मेरे आत्मा का प्यारे पिता से मेल होगा ।" ऐसा शुभ संकल्प धारण करें ।

६. संध्या अपनी भाषा में क्यों न करें ?

अपनी भाषा में वह मिठास, अर्थ-विशेषता, दिव्य-दृष्टि, गम्भीरता, भाषा का लालित्य, माधुर्य्य, साधुता तथा असाधारणता नहीं होती, जैसी पवित्र मधुर भगवती वेदवाणी में होती है ।

१०. क्या यह संध्या वैदिक है ?

इस संध्या में केवल दूसरा और तीसरा मन्त्र वेद का नहीं, परन्तु इन जैसे मन्त्र अथर्ववेद १६।६०।२ में पाये जाते हैं, इसलिये ये वैदिक हैं।

एक निवेदन

पाठक महोदय ! आजकल प्रायः सारे देश में संध्या का उच्चारण तथा पठन-पाठन दोषयुक्त दिखाई देता है। एक ही बेढङ्गी चाल और स्वर से सर्वत्र इस का आलाप किया जाता है। किस शब्द का किस शब्द के साथ सम्बन्ध है, इसे किसके साथ मिला कर उच्चारण करना चाहिए ?—वह संस्कृत के न जानने तथा योग्य सिखलाने वाले गुरु

के अभाव के कारण कुछ का कुछ और अर्थ का अनर्थ कर दिया जाता है।

(१) इस संध्या में दो के अतिरिक्त शेष प्रत्येक मन्त्र का ठीक-ठीक प्रमाण दे दिया गया है।

(२) प्रत्येक मन्त्र चारों वेदों तथा अन्यत्र कहां-कहां पर आया है, यह भी दर्शा दिया गया है।

(३) प्रत्येक मन्त्र का ऋषि, देवता तथा छन्द भी दे दिया गया है, जिससे मन्त्र का अर्थ तथा छन्दोनुसार उच्चारण के लिये विभाग किया जा सके।

(४) वैदिक कोषों से मिला कर तथा श्री स्वामी दयानन्द कृत "पंच महायज्ञ विधि" के अनुसार अर्थ ठीक कर दिये गये हैं।

(५) हमें सन्ध्या क्यों तथा किस समय करनी चाहिये, यह भी वेदादि सत्शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा ऊपर दर्शा दिया गया है।

(६) अर्थों तथा छन्दों के अनुसार चिन्ह [,] देकर मन्त्रों का, उच्चारण की सुगमता के लिए, विभाग कर दिया गया है। तथा,

(७) मन्त्रों का अर्थ बहुत सुन्दर, रस-भरे शब्दों तथा भक्तिसूचक वाक्यों में करने का यत्न किया गया है।

इनमें से कई बातों की ओर अभी तक किसी भी विद्वान् ने इतना नहीं दिया था। अस्तु।

सूचना - जहां पर [,] ऐसा चिन्ह हो, वहां पर ठहरना चाहिये।

ओ३म्

वैदिक-सन्ध्या

आचमन मन्त्र

ओ३म् । शन्नो देवीरभिष्टये,
आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१॥

ऋ० १०।६।४॥ यजु० ३६।१२। साम उ० १।१।६॥ सा० । पू० प्र० २। अथर्व० १॥ ज० १।१।१॥ अ० १।१।६॥ चारों वेदों में है ।

ऋग्वेद में—त्रिशिरास् त्वाष्ट्र सिन्धु० द्वीपो वाऽम्बरीषः और यजुर्वेद में—दध्यङ्ङाथर्वणः ऋषिः । आपो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

शब्दार्थ

ओ३म्—रक्षा करने वाला
शम्—कल्याणकारी
नः—हमारे लिये
देवी—सर्वप्रकाशक
अभिष्टये—मनोवांछित फल के लिये
आपः—सर्वव्यापक प्रभु
भवन्तु—होवे (होवें)
पीतये—पूर्णानन्द (मोक्ष) प्राप्ति के लिए
शंयोः—सुख, शान्ति और कल्याण की
अभि—चारों ओर से
स्रवन्तु—धीमी-धीमी वर्षा करे (करें)
नः—हम पर

भावार्थ—

सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक परमेश्वर मन-मांगे पदार्थ, सुख, शान्ति और पूर्ण

आनन्द तथा मुक्ति की प्राप्ति के लिये हम सब पर कल्याणकारी होवे और चारों ओर से सुख की वृष्टि करें ॥१॥

इन्द्रियस्पर्श—

ओ३म् वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः ।
ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम् ।
ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः ।
ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ।
ओं करतल करपृष्ठे ॥२॥

भावार्थ—

वाक् वाक्—जिह्वा तथा वाणी
प्राणः प्राणः—नासिका तथा श्वासोच्छ्वास
चक्षुः चक्षुः—आँखें तथा देखने की शक्ति
श्रोत्रम् श्रोत्रम्—कान तथा श्रवणशक्ति

नाभिः—नाभि (धुन्नी)
हृदयम—हृदय (दिल)
कण्ठः—कण्ठ (गला)
शिरः—सिर (मस्तक)
बाहुभ्याम्—दोनों भुजाओं से
यशः—कीर्ति
बलम्—शक्ति, पराक्रम
करतल—हथेली
करपृष्ठे—हाथ का पृष्ठ भाग

भावार्थ—

परमेश्वर की अपार दया से मेरे मुख में रसना तथा बोलने की शक्ति, नासिका-द्वार तथा सूंघने की शक्ति, आँखें तथा देखने की शक्ति, कान तथा सुनने की शक्ति मरणपर्यन्त विद्यमान् रहें। नाभि-चक्र ठीक काम करे। हृदय समुद्र की भांति गंभीर तथा विशाल हो।

गले से मधुर स्वर निकले, सिर ठण्डा रहे। भुजाएं सदा यश और बल कमाने वाले काम करें। हाथ स्वस्थ रहें। प्रभो! जानबूझ कर दशों इन्द्रियों से पाप कभी न करूँ ॥२॥

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि ।
ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः ।
ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे ।
ओ३म् महः पुनातु हृदये ।
ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम् ।
ओ३म् तपः पुनातु पादयोः ।
ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ।
ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥३॥

शब्दार्थ—

भूः—जगदाधार, प्राणस्वरूप
पुनातु—पवित्रता देवे (पवित्र करे)
शिरसि—सिर में
भुवः—दुःखनाशक
नेत्रयोः—आंखों में
स्वः—सुखस्वरूप, सुखदाता
कण्ठे—गले में
महः—बड़ा
हृदये—हृदय में
जनः—पिता, पालक
नाभ्याम्—नाभि (धुन्नी) में
तपः—पापियों का दण्डदाता, ज्ञानस्वरूप
पादयोः—पांवों में
सत्यम्—सत्यस्वरूप, अविनाशी
पुनः—फिर

खम्—आकाश (की भांति)
ब्रह्म—महान् ईश्वर
सर्वत्र—सब स्थान तथा अङ्गों में

भावार्थ

प्राणप्रिय परमेश्वर, मेरे सिर को; दुःख दूर कर्त्ता, आंखों को; सुखदाता, गले को; सब से बड़ा प्रभु, हृदय को; सब का पिता, नाभिचक्र को; दुष्टों को सन्तापकारी, पैरों को; एकरस प्रभु, फिर सिर को और आकाशवत् सर्वव्यापक पिता, सब अङ्गों को पवित्र तथा पुष्ट करे ! ॥३॥

प्राणायाम मन्त्र

ओ३म् भूः । ओ३म् भुवः ।
ओ३म् स्वः । ओ३म् महः ।

ओ३म् जनः। ओ३म् तपः।

ओ३म् सत्यम् ॥४॥

तैत्ति० आ०। प्रपा० १०। अनु० २७॥
नारायणोपनिषद् मं० ३५॥

भावार्थ—

हे सर्वरक्षक प्रभो! आप प्राण-स्वरूप, दुःख-नाशक, सुखस्वरूप, सब से बड़े, सब के पिता, दुष्टों को दण्ड देने वाले, अन्तर्यामी तथा सत्यस्वरूप हैं ॥४॥

सूचना—बल से प्राणवायु को बाहिर निकाल देवें। तब धीरे-धीरे श्वास लेवें। शक्ति के अनुसार इसे भीतर रोके रक्खें। तब शनैः शनैः श्वास बाहिर छोड़ देवें। यह एक प्राणायाम हुआ, इसी प्रकार समय, इच्छा तथा शक्ति के अनुसार ३ से ८१

तक प्राणायाम करने का विधान है।

(ईश्वर-रचना-चिन्तन से पाप-दलन मन्त्र)

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभी-

द्धात्तपसोऽध्यजायत।

ततो रात्र्यजायत,

ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥५॥

ऋ०।१०।१९०।१॥नारायणो १० मं० १३॥

अघमर्षणो मधुच्छन्दसः ऋषिः। भाव-
वृत्तम् देवता। विराडनुष्टुप छन्दः।
गान्धारः स्वरः।

शब्दार्थ—

ऋतम् वेद शास्त्र

च – और

सत्यम्—स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् की कारण-रूप प्रकृति

अभि—चारों ओर से

इद् धातु—प्रकाशस्वरूप से

तपसः—ज्ञानस्वरूप से

अधि+अजायत—उत्पन्न हुई

ततः—उसी से

रात्रि—महाप्रलय

समुद्रः—भूमिस्थ समुद्र (परमाणुरूप)

अर्णवः—आकाशस्थ मेघरूप जलसागर

भावार्थ—

उसी ज्ञानमय तथा सब प्रकार से प्रकाशमान् परमात्मा की अनन्त सामर्थ्य से वेद और त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई, उसी की शक्ति से महा-प्रलय तथा सर्वत्र पृथ्वी तथा आकाश में जल उत्पन्न हुआ ॥१॥५॥

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि,
संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्,
विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥६॥

ऋ०।१०।१९०।२॥नारायणोप० मं० १४॥
अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ऋषिः ।
भाववृत्तम् देवता । गान्धार. स्वरः ॥

शब्दार्थ—

समुद्रात्—भूमिस्थ समुद्र से
अर्णवात्—आकाशस्थल जल-कोष से
अधि—पीछे
संवत्सरः—वर्ष आदि काल

अजायत—उत्पन्न हुआ
अहोरात्राणि—दिन और रात
विदधत्—बनाये
विश्वस्य—जगत् के
मिषतः—सहज स्वभाव से
वशी—वश में रखने वाले, प्रभु ने

भावार्थ—

सकल संसार को अपने वश में रखने वाले परमात्मा ने अपने सहज-स्वभाव से जलकोष रचने के अनन्तर, काल के विभाग, दिन रात तथा वर्ष आदि उत्पन्न करने वाले रवि को रचा ॥२॥६॥

ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्

दिवंच पृथिवी-

आन्तरिक्षमथो स्वः ३।७॥

ऋ. १०।१६०।३॥ नारायणोप० मं० १४॥
अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ऋषिः।
भाववृत्तम् देवता। पाद निचृदनुष्टुप
छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

शब्दार्थ—

सूर्य्याचन्द्रमसौ—सूर्य्य और चन्द्र को
धाता—धारण करने वाले ने
यथापूर्वम्—जैसे पहिले कल्प की सृष्टि में
अकल्पयत्—बनाया
दिवम्—द्युलोक को
पृथिवीम्—भूमिलोक को
अन्तरिक्षम्—अन्तरिक्ष लोक को
अथो—और

स्वः—भूमि तथा द्युलोक के बीच के लोक-
लोकान्तरों को

भावार्थ—

सारे जगत् को धारण तथा पालन-पोषण करने वाले परमेश्वर ने जैसे पहले कल्प की सृष्टि में रचना की थी, ठीक उसी प्रकार अब इस कल्प में भी सूर्य और चन्द्र को, अग्निरूपी अपने सर्वोत्तम प्रकाश को, पृथ्वी को, आकाश को, और भूमि तथा द्युलोक के बीच के लोक-लोकान्तरों को रचा ॥३॥

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपति—
रसितो रक्षितादित्या इषवः,
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्यो नम, एभ्यो अस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१।८॥

अ० ।३॥२७॥१॥ आथर्वणरुद्रः ऋषिः । अग्निः देवता । अष्टिः छन्दः ॥

शब्दार्थ—

प्राची—पूर्व अथवा सामने
दिग्—दिशा में
अग्नि—प्रकाशस्वरूप परमेश्वर
अधिपति—राजा, स्वामी
असितः—बन्धनरहित
रक्षिता—बचाने वाला
आदित्याः—सूर्य की किरणें, विद्वान
इषवः—बाणरूप

तेभ्यो नमः—उन सब के लिए नमस्कार हो

अधिपतिभ्यो नमः—स्वामियों के लिए नमस्कार हो

रक्षितृभ्यो नमः - रक्षा करने वालों के लिये नमस्कार हो।

इषुभ्यो नमः— तीरों के लिए नमस्कार हो

एभ्यो अस्तु—इन सबके लिए (नमस्कार) हो

यः—जो

अस्मान्—हमको

द्वेष्टि—द्वेष (वैर) करता है।

यम्—जिसको (से)

वयम्—हम

द्विष्मः—वैर करते हैं

तम्—उसको

वः—आपके

जम्भे—जबड़े में (न्याय पर)
दध्मः—रखते हैं (छोड़ते हैं)

भावार्थ—

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर पूर्वदिशा अथवा सामने की ओर का स्वामी है। वह सर्व-प्रकार के बन्धनों से रहित है, वही हमारी रक्षा करने वाला है। सूर्य्य की किरणें उसकी रक्षा के साधन हैं। इन सब स्वामियों, रक्षा करने वालों तथा तीर-रूप रक्षा के साधनों को बार-बार नमस्कार हो। जो जन अज्ञानवश हमसे वैर करता है और जिससे हम वैर करते हैं उसको आपके न्यायरूपी जबड़े में रखते हैं ॥१८॥

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता, पितर

इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्यो नम, एभ्यो अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि, यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२।६॥

अ० ३।२७।२॥ आथर्वण रुद्र ऋषिः इन्द्रः देवता । अष्टिः छन्दः ।

शब्दार्थ—

दक्षिणा—दाहिनी
दिक्—दिशा में
इन्द्रः—परमैश्वर्ययुक्त प्रभु
अधिपतिः—स्वामी
तिरश्चि—टेढ़े स्वभाव तथा चाल वाले मनुष्य, पशु तथा ॥
राजि (जी)—पंक्ति, समूह
रक्षिता—बचाने वाला

पितरः—विद्वान् जन

इषवः—बाण

भावार्थ—

प्रभो ! आप परमैश्वर्य के स्वामी हमारे दक्षिण की ओर भी विराजमान् हैं। आप ही हमारे स्वामियों के स्वामी हैं। बुरे स्वभाव वाले मनुष्य तथा टेढ़ी चाल चलने वाले सर्पादि बिना हड्डी के पशुओं से हमारी रक्षा करते हैं और ज्ञानियों द्वारा हमें ज्ञान प्रदान करते हैं। उन सब…(इससे आगे पूर्ववत्) ॥२॥६॥

ओ३म् प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्या नम, इषुभ्यो नम, एभ्यो

अस्तु। योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि, यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३।१०॥

अ० ॥३।२७।३॥ आथर्वणरुद्रः ऋषिः वरुणो देवता। अष्टिः छन्दः।

शब्दार्थ—

प्रतीची - पश्चिम वा पृष्ठभाग
दिग्—दिशा में
वरुणः—सर्वोत्तम, चुनने योग्य
अधिपतिः—स्वामी
पृदाकू—सर्प, बिच्छू तथा व्याघ्र आदि कुशब्द करने वाले पशु
रक्षिता—रक्षा करने वाले पशु
अन्नम्—अनाज, भोजन
इषवः—बाण

भावार्थ—

हे सौन्दर्य-सागर! आप हमारी पिछली

ओर भी विद्यमान् हैं। आप ही हमारे राजाधिराज हैं। भयङ्कर शब्द करने वाले तथा विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाले हैं। सर्व प्रकार के अन्न उत्पन्न करके हमारी पालना करते हैं। उन सब······(पूर्ववत्) ॥३।१०॥

ओ३म् उदीची दिक्, सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्य नम, एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४।११॥

अ० ३।२७।४॥

आथर्वण रुद्रः ऋषिः। सोमः देवता

अष्टिः छन्दः ।

शब्दार्थ—

उदीची—उत्तर अथवा बाईं
दिक्—दिशा में
सोमः—सौम्य, शान्तस्वरूप प्रभु
अधिपतिः—स्वामी
स्वजः—(सु+अजः=स्व+जः) भली प्रकार जन्मरहित, स्वयम्भू
रक्षिता—रक्षा करने वाला
अशनिः—बिजली
इषवः—बाण

भावार्थ—

हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! आप हमारी बाईं ओर भी व्यापक हैं। आप हमारे परमस्वामी हैं। आपके माता पिता

आदि जन्मदाता कोई नहीं। आप स्वयम्भू और हमारे रक्षक हैं। आप ही विद्युत् द्वारा हमारे शरीर में रुधिर-सञ्चालन करके हमें जीवित रखते हैं ॥४।११॥

ओ३म् ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः, कल्माषग्रीवो रक्षिता, वीरुध इषवः। तेभ्यो नमो, ऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्यो नम, एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ५।१२॥

अ० ३।२७।५॥ आथर्वण रुद्रः ऋषिः। विष्णुः देवता। भूरिक अष्टिः छन्दः।

शब्दार्थ—

ध्रुवा—स्थिर, निश्चल, निचला।

अधिपति—अधिराज
श्वित्रः—शुद्धस्वरूप, ज्ञानमय, श्वेत कुष्ठ
रक्षिता—स्वामी
वर्षम्—वर्षा
इषवः—बाण

भावार्थ—

हे वेदादि सत्यशास्त्रों तथा लोकों के राजाधिराज, सर्वमहान् प्रभो ! आप हमारे ऊपर की दिशा में विराजमान् हैं। उधर भी आप ही हमारे स्वामी हैं। आप पवित्र स्वरूप, ज्ञानमय, कुष्ठादि रोगों से भी रक्षा करने वाले हैं। वृष्टि के बिंदु रक्षा के साधन हैं ॥६।१३॥

उपस्थानमन्त्राः

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परि

स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म-
ज्योतिरुत्तमम् ॥१।१४॥

ऋ० १ । १० ।५०॥ य० । २०,२१।२७, १०।३५, १४।३८।२४॥ अ० ७।३।५७॥
प्रस्कण्वः ऋषिः, आदित्या देवाः ।
दीर्घतमा ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृ-दनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

शब्दार्थ—

उत्—अत्यन्त उत्तम, श्रद्धा से
वयम्—हम
तमसः—अन्धकार से
परि—परे, दूर
स्वः—सुखस्वरूप
पश्यन्तः—देखते हुए

उत्तरम् प्रलय के पीछे रहने वाले को
देवम्—सर्वानन्ददाता, दिव्य गुण वाले को
देवत्रः—उत्कृष्ट देव को
सूर्यम् चराचर के आत्मा, प्रभु को
अगन्म—प्राप्त होवें
ज्योतिः—प्रकाशस्वरूप को
उत्तमम्—सर्वोत्कृष्ट को

भावार्थ—

हे परमदेव परमेश्वर! आप सब संसार के अन्धकार (अज्ञान) से परे हैं। आप सुखस्वरूप हैं। निश्यता से प्रलय के पीछे रहने वाले हैं। आप अनन्त दिव्य गुणों से युक्त हैं! महात्माओं और मुमुक्षुओं, तथा भक्तों के आनन्ददाता हैं। आप देवों के देव हैं। आप चराचर के आत्मा हैं। हम आपके सर्वोत्तम तेज

को अपने हृदय में देखते और अनुभव करते हुए अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से आप को प्राप्त होवें ॥ १ । १४ ॥

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं,
देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ । १५ ॥

ऋ० १ । ५० । १॥ य० । ७, ४१ । ८, ४१ । ३३, ३१॥ साम० । पू० प्र० १। अथर्व १ ॥ अ० १३, २ । १६ २० । ४७, १३ । प्रस्कण्वः ऋषिः । सूर्य्यो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

शब्दार्थ—

उत्—अच्छी प्रकार से
उ—निश्चय से

त्यम्—उस पूर्वोक्त प्रभु को

जातवेदसम्—चारों वेदों की उत्पत्ति के कारण-रूप उत्पन्न हुए हुए प्रकृति के सकल पदार्थों में व्यापक और सकल जगत् को जानने वाले प्रभु को

देवम्—दिव्य गुणों से युक्त को

वहन्ति—प्रकाशित करती हैं, वा प्राप्त करते हैं

केतवः—किरणें, नानाविधि जगत् के पृथक् पृथक् रचनादि को बतलाने वाले ईश्वर के गुण, वेद, पदार्थ तथा पताकाएं

दृशे—देखने के लिये

विश्वाय—सब के लिये

सूर्य्यम्—चराचर के आत्मा को

भावार्थ—

जिस महान् शक्ति से सकल ज्ञान के देने वाले चारों वेद उत्पन्न हुए हैं, जो सब पदार्थों में व्यापक है, जो प्रत्येक व्यवहार को जानता है, जो दिव्य गुणों की खान है, जो स्थावर और जङ्गम जगत् का सूत्रात्मा है, उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को वेद की अद्भुत रचना के ज्ञापक गुण तथा अन्य पदार्थ लाल-पीली झण्डियों की भाँति निश्चय से भली प्रकार दिखाते हैं, जिससे कि सब जन देख सकें ॥ २ । १५ ॥

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं,
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चस्वाहा ॥
३ । १६ ॥

ऋ० । १ । ११५ ॥ य० । ७ । ४२ । १३ । ४६ ॥ सा० पू० प्र० ६ । अथर्व ३ ॥ अ० १३ । २ । ३५ । मंत्र २० । १०७, १४ आङ्गिरसः कुत्सः विरूपः ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृत् । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् ॥

शब्दार्थ—

चित्रम्—अद्भुत-स्वरूप ईश्वर
देवानाम्—दिव्य गुण युक्त विद्वानों के हृदयों में ।

उद्गात्—अच्छी प्रकार से प्राप्त तथा प्रकाशित हैं।

अनीकम्—बलस्वरूप, नेता (युद्ध सेना)

चक्षुः—प्रकाशक, उपदेशक, विज्ञानमय, विज्ञापक, सर्वसत्योपदेष्टा।

मित्रस्य—द्रोहरहित मनुष्य, सूर्यलोक का अथवा प्राण का।

वरुणस्य—उत्तम, श्रेष्ठ कर्मों तथा गुणों में वर्तमान मनुष्य का, जल लोक, अथवा अपान का।

अग्नेः—शिल्पविद्या-विशारद, अग्नि तथा बिजली के रूप, गुण, दाहादि के प्रकाशक मनुष्य का तथा अग्नि का।

आ+प्रा—चारों ओर धारण करता है।

द्यावा—द्युलोक को।

पृथिवी—भूमि-लोक को

अन्तरिक्षम्—अन्तरिक्ष-लोक को

सूर्य्यः—जड़, चेतन, जगत् का सूत्रात्मा

आत्मा—निरन्तर सर्वत्र व्यापक

जगत्:—चेतन जगत् का

तस्थुषः—जड़ जगत् का

च—और

स्वाहा—सुवचन, सत्यवचन, स्वात्मबुद्धि, आहुति।

[सु आहेति वा, स्वा वागाहेति वा, स्वं आहेति वा, स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा। निरुक्त ८। २०]

१. अच्छा, कोमल, मधुर, कल्याणकारी प्रिय वचन सब से सदा बोलना चाहिये।

२. जैसा मन में वैसा वाणी से बोलना

अर्थात् सदा सत्य बोलना चाहिये।

३. अपने पदार्थ को ही 'अपना' कहना चाहिए, दूसरे की वस्तु का स्वयं स्वामी नहीं बनना चाहिए।

४. अच्छी प्रकार सामग्री से सदा हवन करना चाहिए।

भावार्थ—

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता पिता! आप अद्भुतस्वरूप हैं, विद्वानों के हृदयों में सदा विराजमान हैं। सब दुःखों को तथा काम क्रोधादि शत्रुओं के हनन के लिए आप बलरूप हैं। आपके बिना मनुष्यों को सुखकर और कौन हो सकता है? आप प्राण अपान के, सब को मित्र

की दृष्टि से देखने वाले जल और अग्नि विद्या में निपुण जनों के और सूर्यादि लोकों के प्रकाशक हो। आप पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक आदि सारे जगत् को रचकर सब को धारण कर रहे हो। आप सर्वव्यापक अर्थात् चर और अचर जगत् के सूत्रात्मा हो। यह सुन्दर ध्वनि मेरे हृदय-मन्दिर से निकल रही है। आपकी दया से हम सब सदा मीठा बोलें और प्रयत्न से अग्निहोत्र आदि यज्ञ किया करें ॥ ३ । १६ ॥

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं
पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं
जीवेम शरदः शत ॅं

शृणुयाम शरदः शतं,
प्रब्रवाम शरदः शतम्
अदीनाः स्याम शरदः शतं
भूयश्च शरदः शतात् ॥४।१७॥

ऋ ७। ६६। १३॥ य०। ३०। २४॥

पुरः उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥
यजुर्वेदे दध्यङ्ङाथर्वणः ऋषि। सूर्यो देवता। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप छन्दः। धैवतः स्वरः॥

शब्दार्थ—

तत्—वह प्रसिद्ध जगत्कर्त्ता
चक्षुः—सर्वद्रष्टा
देवहितम्—विद्वानों का हितकारी प्रभु

पुरस्तात्—सर्वत्र व्यापक, विज्ञान-रूप
शुक्रम्—शुद्ध स्वरूप
उच्चरत्—प्रलय के पीछे रहने वाला
पश्येम्—हम देखें
शरदः—ऋतु, काल, वर्ष
शतम्—सौ (१००)
जीवेम्—हम जीवें
शृणुयाम्—हम सुनें
प्रब्रवाम्—हम बोलें, उपदेश करें
अदीनाः—स्वतन्त्र (आज़ाद)
स्याम—हम होवें
भूयः—अधिक
च—और
शतात्—सौ (१००) से

भावार्थ—

प्रभो ! आप सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। आप

सब कुछ देखने वाले हैं। विद्वानों, धर्मात्माओं और अपने सेवकों के कल्याणकारी हैं। आप सृष्टि से भी पूर्व विद्यमान् रहने वाले हैं। आप शुद्ध-स्वरूप और प्रलय के भी पीछे रहने वाले हैं। आपकी कृपा से हम सौ वर्ष तक आंखों से देखते रहें, सौ वर्ष तक जीते रहें, सौ वर्ष तक आपके गुणों में श्रद्धा रखते हुए उनको सुनते, सुनाते और उपदेश करते रहें। आपकी उपासना करते हुए, सौ वर्ष किसी के आगे दीन होकर हाथ न फैलावें, दास न रहें, स्वतन्त्र और धनाढ्य बनें। इसी प्रकार सौ वर्ष से अधिक भी आपकी अपार दया से

जीएं, सुनें, बोलें और आप के पवित्र ज्ञान—वेद भगवान्—को पढ़कर उसका उपदेश करें ॥४।१७

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८॥

ऋ० ३ । ६२ १०॥ य० ।३।३५, २२।६, ३०।२, ३६ ३॥ सा० पू० प्र० ६ अथर्व० ३, सा० पू० प्र० ७ मं० १० ॥

नारायणोपनिषद् मन्त्र ३५ ॥ सूर्य्योपनिषद्यपि ।

ऋग्वेदे विश्वमित्रः ऋषिः । सविता देवता । निचद्गायत्री छन्दः षड्जः स्वरः ।

यजुर्वेदे नारायण: ऋषिः। सविता देवता। देवी बृहती छन्दः। षड्जः स्वरः। य० ३६।३ में यह मन्त्र महा-व्याहृतियों सहित है, अन्यत्र इनसे रहित है, तभी वहां (य० ३६।३ में) छन्द देवी बृहती है, अन्यत्र निचृद् गायत्री है। य० ३०।१ में ऋषि 'नारायण' है अन्यत्र "विश्वमित्र" है।

शब्दार्थ—

ओ३म्—सर्वत्र, सदा सर्वथा रक्षक। यह शब्द अकार, उकार और मकार से बना है। 'अकार' के अर्थ विराट्, अग्नि, विश्व; 'उकार' के अर्थ हिरण्य-गर्भ, वायु, तैजस् और 'मकार' के अर्थ ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ हैं। इस एक नाम से प्रभु के अनेक नामों का ग्रहण होता

है, अतः यह सर्वोत्तम नाम है।

भूः—प्राणाधार

भुवः—दुःखनाशक

स्वः—सुखस्वरूप, सुखदाता

तत्—वह प्रसिद्ध प्रभु

सवितः—उत्पन्न करने वाले का

वरेण्यम्—सर्वश्रेष्ठ

भर्गः—शुद्धस्वरूप, पापनाशक

देवस्य—दिव्य स्वरूप का

धीमहि—हम ध्यान करते हैं

धियः—बुद्धियों को

यः—जो

नः—हमारी

प्रचोदयात्—प्रेरणा करे

भावार्थ—

हे दयालु परमात्मन्! आप अपनी

असीम कृपा से हमारी सदा रक्षा करते हैं। आप ही हमारे जीवनाधार हैं। अपने सेवकों के दुःखों को दूर करके उनको सुख देने वाले हैं। आप सर्वत्र सुप्रतिष्ठित और सुप्रसिद्ध हैं। आप सर्वोत्तम, शुद्ध, पवित्र और ज्ञानस्वरूप हैं। आप से ही यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। आप ही सकल शुभ गुणों की खान हैं। आपका हम प्रतिदिन ध्यान करें और आप हमें विवेकशीलता, धारणावती मेधा, सद्बुद्धि प्रदान करें ॥१८॥

समर्पण मन्त्र

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकरायच, मयस्कराय च, नमः शिवाय च, शिवतराय च ॥१९॥

य० १६।४१।। परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देव: ऋषि: । रुद्रो देवता स्वराडार्षी बृहती छन्द: । मध्यम: स्वर: ।

शब्दार्थ—

नम:—नमस्कार हो
शम्भवाय—शान्ति के स्रोत के लिये
च—और
मयोभवाय—सुख के स्रोत के लिये
शङ्कराय—शान्त के लिये
मयस्कराय—सुखकारी के लिये
शिवाय—कल्याणस्वरूप के लिये
शिवतराय—अत्यन्त मङ्गलस्वरूप के लिए

भावार्थ—

प्रभो ! आप सुखस्वरूप हैं, सर्वोत्तम सुखों को देने वाले हैं, आपको नमस्कार हो। आप कल्याण के कर्ता, मोक्ष-स्वरूप

हैं, आप ही अपने भक्तों को सुख और शान्ति देने वाले और उनको धर्मकार्यों में लगाने वाले हैं, आपको नमस्कार हो। आप अत्यन्त मङ्गलस्वरूप हैं और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले हैं। आपको हमारा अत्यन्त नम्रता, परम श्रद्धा और भक्ति से बार-बार नमस्कार हो॥ १६॥

ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्यारे पिता! आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों, अर्थात् इन तीन तापों को दूर करो।

॥ ओं शम्॥

प्रणव-जाप

संध्या करने के पश्चात् सब को ओ३म का जाप करना चाहिए। शास्त्रों में इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। श्री स्वामी जी महाराज भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थ-प्रकाश के तीसरे और सातवें समुल्लास में इस पर बड़ा बल देते हैं। इससे मन की एकाग्रता, सात्विक भाव, शान्ति तथा आनन्द प्राप्त होता है। योग-साधन की तत्परता का यह प्रथम अङ्ग है। जितना अधिक समय तथा रुचि होगी उतनी ही अधिक योगानन्द की प्राप्ति होगी।

ब्रह्म-स्तोत्र

"प्रणव-जाप" के पश्चात् जितना समय दे सकें, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिये। परमेश्वर की 'स्तुति' करने से उसमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधार होता है। उसकी 'प्रार्थना' करने से निरभिमानता, उत्साह तथा सहायता प्राप्त होती है। 'उपासना' से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है। नीचे कुछ सुन्दर मन्त्र तथा श्लोक दिए जाते हैं, उन्हें गाइये, मन प्रसन्न होगा—

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा,

एकं रूपं बहुधा यः करोति।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः।
तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१॥

प्रभो ! तुम एक हो। सारे ब्रह्माण्ड को वश में रखने वाले हो। सब प्राणियों के अन्तःकरण में विराजमान् हो। एक प्रवृत्ति से नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करते हो। जो धीर, विद्वान्, योगी आपको अपने आत्मा में ठहरा हुआ देखते हैं उन्हीं को सच्चा सुख प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं ॥१॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्।
एको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः।
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥२॥

प्रभो ! आप नित्यस्वरूप हैं, चेतनरूप हैं, आप एक हैं, आप भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपको जो लोग अपने आत्मा के अन्दर साक्षात् कर देखते हैं, उनको वास्तविक तथा निरन्तर शान्ति प्राप्त होती है ॥२॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्,
तस्य भासा सर्वमिमं विभाति ॥३॥

हे सर्वशक्तिमान् प्रभो ! आपके प्रकाश के तुल्य न तो इस सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रमा और तारों का और न ही बिजली का, अग्नि का तो कहना ही क्या। आपके प्रकाश से ही यह सब प्रकाश वाले हैं, आप प्रकाशस्वरूप हैं ॥३॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म,
पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणातश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्म
एवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥४॥

प्रभो ! आप सब से बड़े, नित्यस्वरूप हैं, आप सर्वत्र व्यापक हैं । आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, नीचे-ऊपर, सब जगह फैले हुए हैं । सारे संसार में सबसे उत्तम आप ही हैं ॥४॥

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद् वयम्,
न चेदवेदीर्महतो विनष्टिः ।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति,
अथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥५॥

प्रभो ! इसी जन्म के अन्दर यदि हम आपको साक्षात् कर लेवें, तो अच्छी बात है, अन्यथा महान् अनर्थ होगा। जो जन आपको जान जाते हैं वे अमर हो जाते हैं और दूसरे दुःख के भागी बनते हैं।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्तिवेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता,
तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम् ॥६॥

प्रभो ! आपके न हाथ हैं, न पांव हैं, परन्तु सब को ग्रहण करने वाले हैं, और सबसे अधिक वेग वाले हैं। आपकी आंखें नहीं, परन्तु देखते सब कुछ हैं। आपके कान नहीं, परन्तु सुनते सब कुछ हैं। आप सबको जानते हैं, परन्तु आप

का पूर्णतया जानने वाला कोई नहीं । आप ही सब के नेता, महाप्रभु सर्वशक्तिमान् हैं ।

अणोरणीयान् महतो महीयान्
आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः,
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको,
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥७॥

प्रभो ! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं । आप महान् से महान् हैं । जीवात्मा के भीतर छिपे हुए हैं । दयामय ! आपकी दया से ही आप के शुभ दर्शन हो सकते हैं, अन्यथा नहीं ॥७॥

सूक्ष्मातसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये,
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं,
ज्ञात्वा शिवं शांतिमत्यन्तमेति ॥८॥

प्रभो ! संसार में आप अति सूक्ष्म हैं। अनेकरूप संसार के स्रष्टा हैं, सारे ब्रह्माण्ड को घेरे हुए हैं। आपको जानकर ही हम सच्ची शांति को प्राप्त कर सकते हैं ॥८॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता,

विश्वस्याधिपः सर्वभूतेषु गूढः।

यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवाश्च,

तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥९॥

सर्वपालक प्रभो ! आप ही समय पर सबकी रक्षा करते हैं। आप ही सब के स्वामी हैं। आप सब प्राणियों के अन्दर हैं। आप को ही ऋषि-मुनि योगाभ्यासी ध्याते हैं, आपको जानकर ही मृत्यु के जाल को काट सकते हैं ॥९॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा,
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तौ,
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१०॥

दिव्यस्वरूप ! आप ही सकल जगत् को बनाने वाले हैं । आप सर्वमहान् सदा सब के हृदय में वास करते हैं और जो हृदय और मन से आपकी खोज करते हैं, वे अमर पद को पा जाते हैं ॥१०॥

न सदृशे तिष्ठति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनम्,
एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥११॥

निराकार प्रभो ! आपका कोई रूप

नहीं, आपको इन आंखों से कोई नहीं देख सकता। जो हृदय में आपको मन द्वारा जानते हैं, वही अमर हो जाते हैं ॥११॥

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते,
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥१२॥

प्रभो! आप स्वयं सब काम कर सकते हैं। दूसरों की सहायता की आपको आवश्यकता नहीं पड़ती। आपके तुल्य इस संसार में कोई नहीं, तो आपसे अधिक कौन हो सकता है। जो आपकी अद्भुत् शक्ति है, नाना प्रकार से वह प्रकट हो रही है। आपमें ज्ञान, बल तथा काम करने की शक्ति स्वभाव से ही है ॥१२॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः,
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः,
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥१३॥

प्रभो ! आप एक हैं, दिव्यस्वरूप हैं, सब में व्यापक हैं, सब को कर्मों का फल देने वाले हैं, सर्वस्रष्टा हैं, केवल सुखरूप, चेतनास्वरूप और निर्गुण हैं ॥१३॥

नमस्ते सते ते जगत् कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय,
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥१४॥

हे सदा रहने वाले, जगत् के कारण प्रभो ! तुझे नमस्कार हो। सर्वलोक के

आश्रय ! चेतनास्वरूप, तुझे प्रणाम हो। सुखस्वरूप मुक्ति के दाता ! तुझे हम नमस्कार करते हैं। हे सर्वव्यापक, परब्रह्म ! तुझे हमारा बार-बार प्रणाम हो ॥१४॥

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥१५॥

प्रभो ! आप ही हमारी रक्षा करने वाले हो, आप ही श्रेष्ठ हो, आप ही जगत् के पालक और स्वप्रकाशक हो। परमात्मन् ! आप ही अकेले जगत्-कर्त्ता, रक्षक और संसार-कर्त्ता हैं। आप ही सब से बड़े, अचल और विकार-रहित हैं ॥१५॥

भयानां भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणिनां, पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं,
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥१६॥

परमात्मन् ! आप भयों को भय देने वाले हैं । आप ही हमारी गति हैं । पवित्रों के पवित्रकर्त्ता आप हैं । आप महाराज के महाराज हैं, परे से भी परे हैं और रक्षा करने वालों के भी रक्षक हैं ।१६॥

वयं त्वां स्मरामो, वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्,
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥१७॥

परमात्मन् ! हम आपको ही स्मरण

करते रहें। आपका ही भजन करें। हम आपको ही सबका साक्षी जान कर पूजें। आप एक हैं। आप सब के आधार हैं और अपने आधार भी स्वयं ही हैं। संसार-रूपी समुद्र में रक्षा करने वाले पोत (जहाज) आप ही हैं। हे प्रभो! हम आपको ही प्राप्त हों ॥१७॥

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके,
न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो,
न चास्य कश्चित् जनिता न चाधिपः॥१८॥

परमात्मन्! आपका इस लोक में कोई पालक नहीं, न कोई शासक है। न ही आप की मूर्ति है। आप कारणों के भी कारण हैं। न कोई आप का उत्पादक है ॥१८॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्,
तं देवतानां परमं हि दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्,
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥१६॥

प्रभो ! आप महेश्वरों के भी महेश्वर हो। देवताओं के भी आप पूजनीय देव हो। आप पतितों के भी अधिपति हो। हे सर्व जगत् के शासक ! हम आपकी स्तुति तथा उपकारों का ध्यान और चिन्तन सदा करते ही रहें ॥१६॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥२०॥

भगवन्! आप ही हमारे माता-पिता हो, आप ही हमारे बन्धु और सखा हो। स्वामिन्! आप ही हमारी विद्या तथा धन हो। हे नाथ! आप ही मेरे सर्वस्व हो और आप ही मेरे पूजनीय उपास्य-देव हो। आपके स्थान में किसी अन्य का भूलकर भी मैं कभी पूजन न करूँ ॥२०॥

★

प्रार्थना भजन

भजन नं० १

१–उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई ।
अब रैन कहां जो सोवत है ॥
जो जागत है सो पावत है ।
जो सोवत है सो खोवत है ॥
२–टुक नींद से आंखें खोल ज़रा ।
और अपने ईश से ध्यान लगा ॥
यह प्रीत करन की रीत नहीं ।
प्रभु जागत है तू सोवत है ॥
३–जो अज करना है अब करले ।
जो कल करना है अज करले ॥
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया ।
फिर पछताये क्या होवत है ॥
४–नादान भुगत करनी अपनी ।
ऐ पापी, पाप में चैन कहां ॥

जब पाप की गठरी शीश धरी ।
फिर शीश पकड़ क्यों रोवत है ॥

★

भजन नं० २

१—विश्वपति के ध्यान में,
जिसने लगाई हो लगन ॥
क्यों न हो उसको शान्ति,
क्यों न हो उसका मन मगन ॥
२—काम, क्रोध, लोभ, मोह,
शत्रु हैं सब महाबली ॥
इनके हनन के वास्ते,
जितना हो तुझ से कर यतन ॥
३—ऐसा बना स्वभाव को,
चित्त की शान्ति से तू ॥
पैदा न हो ईर्ष्या की आंच,
दिल में करे नहीं जलन ॥

४-मित्रता सब से मन में रख,
त्याग के बैर-भाव को ॥
छोड़ दे टेढ़ी चाल को,
ठीक कर अपना तू चलन ॥

५-उससे अधिक न है कोई,
जिसने रचा है यह जगत् ॥
उसका ही रख तू आसरा,
उसकी ही तू पकड़ शरण ॥

६-छोड़ के राग द्वेष को,
मन में तू उसका ध्यान कर ॥
तुझ पै दयाल होवेंगे,
निश्चय है यह परमात्मन् ॥

७-आप दया-स्वरूप हैं,
आप का ही है आसरा ॥
कृपा की दृष्टि कीजिये,
मुझ पै हो जब समय कठिन ॥

८-मन में मेरे हो चांदना,
मोक्ष का रास्ता मिले ॥
मार के मन जो 'केवला',
इन्द्रियों को करे दमन ॥

—:०:—

भजन नं० ३

१-करो हरि नय्या मेरी पार ।
तुम बिन कौन बचावनहार,
यह जग पारावार ॥
२-पाप प्रलोभन इंजिन भगवन्,
खींचि करो मझधार ॥
३-मन-केवट माया के मद में,
घेरा पंच मकार ॥
४-ढीली पड़ी सुरत की डोरी,
स्वामिन् तुम्हें विसार ॥
५-बार-बार टकरत दुःसह दुःख,
टूट गया पतवार ॥

६–नाव पुरानी झांझरि हो गई,
क्षण में डूबनहार ॥
७–अब तो हाथ गहो करुणाकर,
पार करो कर्त्तार ॥

—:०:—

भजन नं० ४

पिता जी तुम पतित-उद्धारनहार !
१–दीन-शरण, कंगाल के स्वामी,
दुःख के मोचनहार ॥ १ ॥
२–इस जग माया-जाल भ्रमण में,
सूझे न सार-असार ॥ २ ॥
३–सत्य ज्ञान बिन अंध-सम डोलें,
करें असत्य आचार ॥ ३ ॥
४–पाप-प्रवाह भयंकर जल में,
डूबत हैं मंझधार ॥ ४ ॥
५–तुम्हारी दया बिन को समरथ है,
करे दीनन को पार ॥ ५ ॥

देव-यज्ञ

१-हवन के नाम तथा व्याख्या

हवन का नाम 'होम', 'अग्निहोत्र' अथवा 'देवयज्ञ' भी है। हवन का अर्थ 'दान' है। जिस कर्म से अग्नि [ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर] की आज्ञा पालन करने के लिए भौतिक अग्नि में सुगन्ध आदि पदार्थों का दान किया जाता है, वह कर्म 'हवन' कहलाता है। जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है, वे 'हवन-मन्त्र' कहलाते हैं।

प्रातः और सायंकाल तथा आनन्दोत्सवों पर हवन करना सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है। हवन करने से संसार में बुद्धि, वृद्धि, शूरता, धीरता तथा उत्तम स्वस्थता फैलती है।

२—अग्निहोत्र का महत्व

कुर्वन्नेवेह कर्माणि,
जिजीविषेच्छतं समाः ॥ १ ॥

मनुष्य को चाहिये कि कर्त्तव्य-कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष की पूर्ण आयु भर जीने की कामना करे ॥१॥

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा,
विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ २ ॥

मनुष्य कर्म द्वारा मृत्यु को पार कर

के विद्या द्वारा अमृत को प्राप्त कर सकता है।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः।

प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता ॥ ३ ॥

सब घरों में सायं तथा प्रातः दोनों समय परमेश्वर तथा भौतिक अग्नि की प्रतिष्ठा होवे ॥३॥

सायं प्रातस्तु जुहुयात्,

सर्वकालमतन्द्रितः ॥ ४ ॥

सदा सायं प्रातः हवन करना चाहिये ॥४॥

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः ॥५॥

स्वर्ग की कामना करने वाला मनुष्य होम किया करे ॥५॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तःस्याद्
दैवे चैवेह कर्मणि ।
देवकर्मणि युक्तो हि,
बिभर्त्तीदं चराचरम् ॥ ६ ॥

मनुष्य को चाहिये कि स्वाध्याय और देवयज्ञ में नित्य लगा रहे। देवयज्ञ में लगा हुआ जड़ और चेतन दोनों प्रकार के जगत् को वह धारण करता है ॥६॥

अग्नौ प्राप्ताहुतिः सम्यग्,
आदित्यमुपतिष्ठते
आदित्याज्जायते वृष्टि-
र्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७ ॥

अग्नि में डाली हुई आहुति भली-भांति सूर्य को प्राप्त होती है। सूर्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न होता है,

और फिर प्रजायें होती हैं ॥७॥

अग्निहोत्रं सायं प्रातः गृहाणांनिष्कृतिः
स्विष्टं सुहुतं यज्ञक्रतूनां परायणं,
स्वर्गस्य लोकस्य ज्योतिः ॥८॥

सायं प्रातः अग्निहोत्र घरों को शुद्ध करने वाला है। श्रद्धापूर्वक सम्पूर्ण किया हुआ यज्ञ, यज्ञों और ऋतुओं की पराकाष्ठा है। यज्ञ स्वर्ग-लोक की ज्योति है ॥८॥

नौर्हि वा एषा स्वर्ग्या
यदग्निहोत्रम् ॥ ९ ॥

जो अग्निहोत्र है, वह निश्चय करके स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली नौका है ॥९॥

अग्निहोत्रंच स्वाध्यायप्रवचने च ॥१०॥

अग्निहोत्र और स्वाध्याय तथा उपदेश भी सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥१०॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि

पर्जन्यादन्नसंभवः ।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो,

यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥११॥

अन्न से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न मेघ से पैदा होता है । मेघ यज्ञ से उत्पन्न होता है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है ॥११॥

अहन्यहनि ये त्वेता-

नकृत्वा भुञ्जते स्वयम् ।

केवलं मलमश्नन्ति

ते नराः न च संशयः ॥१२॥

प्रतिदिन जो जन अग्निहोत्र आदि महायज्ञों को किये बिना स्वयं अन्नादि खाते-पीते हैं, वे मनुष्य केवल 'मल' खाते हैं, इसमें संशय नहीं ॥१२॥

३–यज्ञ देश

यज्ञ-स्थल पवित्र तथा शुद्ध होना चाहिए जहां पर्याप्त वायु आ सके।

४–यज्ञशाला

यज्ञ-मण्डल पक्का बनवा रखना चाहिये। ऊपर ध्वजा लहराये। वेदी प्रतिदिन गोमय से लेपी जावे। हल्दी आदि से चित्रित हो।

५–यज्ञकुण्ड का परिमाण

आहुतियों के परिमाण के अनुसार छोटा अथवा बड़ा होना चाहिये। चौरस, ऊपर

से चार गुणा, नीचे से चौथाई रख कर बना लो, अथवा बना हुआ ले लो।

६-यज्ञ समिधा

पलाश (ढाक), शमी (जंड), पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की सूखी हुई, बिना कीड़े की, समिधा बर्तनी चाहिये।

सामग्री ऋतुओं के अनुसार चार प्रकार की सुगन्धित, पुष्टिकारक, मिष्ट और रोग-नाशक होनी चाहिये।

७-सामग्री

१. वसन्त—छली, तालीसपत्र, पत्रज, दाख, लज्जावती, शीतल चीनी, कपूर, चीड़, देवदारु, गिलोय, अगर, तगर, केशर, इन्द्र जौ, गुग्गुल, कस्तूरी, तीनों चन्दन, जावित्री, जायफल, धूप, सरसों,

पुष्करमूल, कमलगट्टा, मजीठ, बनकचूर, दारचीनी, गूलर की छाल, तेजफल, शङ्खपुष्पी, चिरायता, खस, गोखरू, खांड, गो-घृत, ऋतुफल, भात व मोहनभोग, जड़ की समिधा।

२. ग्रीष्म—मुरा, वायविडिंग, कपूर, चिरौंजी, नागरमोथा, पीला चन्दन छलीरा, निर्मली, शतावर, खस, गिलोयं, धूप, दारचीनी, लौंग, कस्तूरी, चन्दन, तगर, भोजपत्र, भात, कुश की जड़, तालीसपत्र, पद्माख, दारू हल्दी, लाल-चन्दन, मजीठ, शिला रस, केशर, जटा-बांसी, नेत्रबाला, इलायची बड़ी, उन्नाब, आमले, मूंग के लड्डू, ऋतुफल, चन्दन चूरा।

३. वर्षा–काला अगर, पीला अगर, जौ, चीड़, धूप, सरसों, तगर, देवदारु, गुग्गुल, नकछिकनी, राल, जायफल, मुण्डी, गोला, निर्मली, कस्तूरी, मखाने, तेजपत्र, कपूर, वनकचूर, बेल, जटा–बांसी, छोटी इलायची, वच, गिलोय, तुलसी के बीज, वायबिडिंग, कमलडण्डी, शहद, चन्दन श्वेत का चूरा, ऋतुफल, नागकेशर, ब्रह्मी, चिरायता, उड़द के लड्डू, छुआरे, शङ्खाहुली, मोचरस, विष्णु कांता, गोघृत, खांड, भात। वर्षा ऋतु में अन्न सामग्री में नहीं डालना चाहिये। इससे सामग्री में कृमि पड़ जाते हैं। कृमियुक्त सामग्री की आहुति देने की अपेक्षा हवन न करना ही अच्छा है।

४. शरद–चन्दन श्वेत, लाल और पीला,

गुग्गुल, नाग केशर, इलायची बड़ी, गिलाय, चिरौंजी, विदारीकंद, गूलर की छाल, ब्राह्मी, दारचीनी, कपूर, कचरी, मोचरस, पित्तपापड़ा, अगर, भारङ्गी, इन्द्र जौ, रेणुका, मुनक्का, असगंध, शीतल-चीनी, जायफल, पत्रज, चिरायता, केशर, कस्तूरी, किशमिश, खांड, जटामांसी, ताल-मखाना, सहदेवी, ढाक की समीधा, धान की खील, खीर, विष्णु कांता, कपूर, ऋतुफल, गोघृत।

५. हेमन्त—कुट, मुसली, गंधक कोकिला, गुड़वांछ, पित्तपापड़ा, कपूर, कचरी, नक-छिकनी, गिलोय, पटोलपत्र, दारचीनी, भारङ्गी, सौंप, मुनक्का, कस्तूरी, चीड़, गुग्गुल, अखरोट, रासना, शहद, पुष्कर-मूल, केशर, छुहारे, गोखरू, कौंच के बीज,

कांटेदार गिलोय, पर्पटी, बादाम, मुलहठी, काले तिल, जावित्री, लाल चंदन, मुश्कबाला, तालीस पत्र, रेणुका गरी, बिना लवण के खिचड़ी, देवदारु।

६. शिशिर—अखरोट, कपूर, वायविडिंग, गुग्ल, मुन्डी, मोचरस, गिलोय, मुनक्का, रेणुका, काले तिल, कस्तूरी, तेजपत्र, केशर, चन्दन, चिरायता, छुहारे, तुलसी के बीज, गुग्गुली, चिरौंजी, काकड़ा, सिंगी, खांड, शतावर, दारुहल्दी, शङ्खपुष्पी, पद्माख, कौंच के बीज, जटा-मांसी, भोजपत्र, मोहनभोग (हलवा)।

—:०:—

वसन्त=चैत्र, वैशाख। मार्च, अप्रैल।
ग्रीष्म=ज्येष्ठ, आषाढ़। मई, जून।
वर्षा=श्रावण, भाद्रपद। जुलाई, अगस्त।

शरद् = आश्विन, कार्तिक। सित० अक्तू०।
हेमन्त = मार्गशीर्ष, पौष। नव० दिस०।
शिशिर = माघ, फाल्गुन। जनवरी, फर०।

८—यज्ञ-घृत

गाय अथवा भैंस का ताज़ा, स्वच्छ, छना हुआ होना चाहिये। हो सके तो कस्तूरी आदि पदार्थ बीच में डाल लो।

९—स्थाली पाक

खिचड़ी, हलवा आदि की बना लो।

१०—यज्ञ-पात्र

शक्ति तथा इच्छानुसार सोने, चांदी, तांबे, लोहे वा लकड़ी के होने चाहियें। १—घृत-पात्र, २—सामग्री-पात्र, ३—आचमन पात्र, ४—जलपात्र, ५—स्रुवा, ६—जल छिड़कने का पात्र, ७—शेष रखने का पात्र ८—चिमटा, ९—पंखा, १०—हवन कुण्ड।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना मंत्रः

ओ३म् विश्वानिदेव सवितदुर्रितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सर्व सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिए। जो कल्याण-कारक गुण, कर्म, स्वभाव वाले पदार्थ हैं, वे सब हमको प्राप्त कराइये ॥१॥

हिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्रे, भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्, स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

अर्थ—जो स्वप्रकाशरूप है और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य, चन्द्रमा आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी चेतनरूप है। जो सब जगत् से पूर्व वर्तमान था, जो इस भूमि, सूर्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप परमात्मा की योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें ॥२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, जिसकी

सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और न्याय अर्थात शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष-सुखदायक है, जिसका न मानना अथात भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुखस्वरूप, सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसकी आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ।।३।।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वै
क इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।४।।

अर्थ—जो चेतन और जड़ जगत् का

अपनी अनन्त महिमा से एक ही राजा है, जो मनुष्य और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, उस सुखस्वरूप, सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा की हम अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

अर्थ – जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया है, जिस जगदीश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, जैसे आकाश में सब लोक लोकान्तरों में पक्षी उड़ते हैं,

वैसे सब लोकों को निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक, कामना करने के योग्य, परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें ॥५॥

प्रजापते ! न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु,
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामिन् परमात्मन् ! आप से भिन्न कोई इन सब उत्पन्न हुए जड़, चेतनादिकों का तिरस्कार नहीं कर सकता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं । जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और इच्छा करें, वह-वह हमारी कामना सिद्ध होवे

जिससे हम लोग धनैश्वर्य के स्वामी होवें ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता,
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्
तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा हम लोगों को भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, सब कामों का पूर्ण करने हारा, सम्पूर्ण लोकमात्र और उनके नाम स्थान तथा उत्पत्ति आदि को जानता है और जिस सांसारिक दुःख-सुख से रहित नित्यानन्दयुक्त, मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में, मोक्ष को प्राप्त होके, विद्वान् स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य,

राजा और न्यायाधीश है। हम लोग मिल कर सदा उसकी भक्ति किया करें ॥७॥

अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो,
भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

अर्थ—हे स्वप्रकाश ! ज्ञानस्वरूप ! सब जगत् के प्रकाश करने हारे, सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा करके हम लोगों को विज्ञान, राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलतायुक्त पाप रूप कर्म को दूर कीजिए। इस कारण हम लोग आपकी

बहुत प्रकार की स्तुति सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥८॥

अथ स्वस्ति-वाचनम्

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

पहिले से ही जगत् को धारण करने वाले, हवन विद्यादि दान और शिल्पक्रिया के प्रकाशक, प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, जगत् के सुन्दर पदार्थों के देने वाले, रमणीय रत्नादिकों के पोषण करने वाले की मैं (उपासना) स्तुति करता हूँ ॥१॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! जैसे पुत्र के लिए पिता ज्ञानदाता होता है, वैसे आप हमारे लिये सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले होवें ॥२॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः,
स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः,
स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥

हे ईश्वर ! अध्यापक और उपदेशक हमारा कल्याण करें, वायु सुख का सम्पादन करे, अखण्डित प्रकाश वाली विद्युत्-विद्या हमारा कल्याण करे। पुष्टि-कारक मेघादि कल्याण करें। अन्तरिक्ष और पृथिवी हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥३॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै,
सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये,
स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥

कल्याण के लिये हम सूर्य के समान तेजस्वी, आदित्य ब्रह्मचारी, सर्वशक्तिमान् और संसार की रक्षा करने वाला शान्तिस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करते हैं। कर्मों के रक्षक! अपने कल्याण के लिये हम आप का आश्रय लेते हैं ॥४॥

विश्व देवा नो अद्या स्वस्तये,
वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये,
स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

आज यज्ञ के दिन हमारे आनन्द के लिये सब विद्वान् लोग और दिव्य पदार्थ वर्तमान हों। सर्वत्र बसने वाला अग्नि मङ्गलकारी हो। हमारे कल्याण के लिए, दुष्टों को रुलाने वाले आप, पापरूप अपराध से हमारी रक्षा करो ॥५॥

स्वस्ति मित्रा वरुणा,
स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च,
स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

हे परमेश्वर! सब के मित्र और श्रेष्ठ सज्जन हमारा कल्याण करें। शुभ धनादि सम्पन्न मार्ग हमारे लिये कल्याण-

हमारे लिये कल्याणकारी हों। राजा और नेता ब्राह्मण हमारे लिये कल्याणकारी हों।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम्, सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता, जानता सङ्गमेमहि ॥७॥

हे ईश्वर! कल्याण के मार्ग में आनन्द से हम विचरें, जैसे सूर्य और चन्द्र नियमित गति से बिना किसी उपद्रव के विचरते और सब को लाभ पहुंचाते हैं। दानशील, अहिंसक और ज्ञान-सम्पन्न के साथ हम मेल करें ॥७॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां, मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

जो आप विद्वानों में भी अत्यन्त पूजनीय और मननशील, सत्यज्ञानी हैं, वे आप सन्यासी लोग विद्या के उपदेश हमें देवें और कल्याणकारी पदार्थों से हमारी रक्षा किया करें ॥८॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः,
पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ,
आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥९॥

जिन विद्वानों के लिये, सब को निर्माण करने वाली पृथ्वी मीठे दुग्धादि पदार्थ देती है और अखण्डनीय मेघों से बढ़ा हुआ अन्तरिक्ष-लोक सुन्दर जल देता है, अत्यन्त बल वाले यज्ञ द्वारा वृष्टि करने

वाले उनको उपद्रव न होने के लिये हमें, प्राप्त कराइये ॥६॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा,
बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो,
दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥

मनुष्यों के द्रष्टा आलस्य रहित लोगों के पूजनीय विद्वान् लोग, जो कि अमरपद को प्राप्त हो चुके हैं, सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं, जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता, ऐसे पाप-रहित विद्वान् जो कि अन्तरिक्ष लोक से ऊँचे देश को ज्ञानादि द्वारा प्राप्त करते हैं, हमारे कल्याण के लिये हों ॥१०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्
वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ
विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ
अदितिं स्वस्तये ॥११॥

अपने तेज से अच्छी प्रकार विराजमान ज्ञानादि से वृद्ध, जो विद्वान् लोग यज्ञ को प्राप्त होते हैं और जो सब से अपीड़ित देवता लोग बड़े-बड़े स्थानों में निवास करते हैं, उन गुणों से अधिक भक्तों को हव्यान्न के साथ और अच्छी स्तुतियों के साथ कल्याण के लिए सेवन कराओ ॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ,
विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।

कोवोऽध्वरं तु विजाता अरं,
करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

जिस स्तुति का तुम सेवन करते हो उस स्तुति को कौन बनाता है? हे मनन-शील विद्वान् लोगो! तुम में कौन यज्ञ को अलंकृत करता है? जो यज्ञ हमारे पाप को हटा कर कल्याण के लिये हमारा पालन करता है, उसका विचार करो।१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः,
समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत,
सुगा नः कर्त्तसुपथा स्वस्तये ॥१३॥

जिसके कारण विद्वान् लोग बड़े-बड़े

यज्ञों द्वारा सम्मान पाते हैं, वे भय-रहित सुख को देवें, और कल्याणकारी वैदिक मार्ग बतावें ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्य।
देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

जो विद्वान् अच्छे ज्ञान वाले सब के जानने वाले स्थावर और जङ्गम लोक के स्वामी बनते हैं वे आज कल्याण के लिये किये और न किये हुये पाप से पार करें ॥१४॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहे ऽहोमुचं
सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्नि मित्रं वरुणं

सातये भगं, द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

पाप के हटाने वाले, शक्तिशाली विद्वानों को संग्रामों में अपनी रक्षा के लिये बुलावें, और सर्वश्रेष्ठ कर्म वाले आस्तिक पुरुषों को बुलावें और अन्नादि लाभ तथा अनुपद्रव के लिये अग्नि-विद्या, प्राणविद्या, सेवनीय जलविद्या, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी की विद्या और वायु-विद्या का हम सेवन करें ॥१५॥

सुत्रामाणं पृथ्वीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६॥

अच्छी प्रकार रक्षा करने वाली लम्बी-चौड़ी, उपद्रव रहित, अच्छा सुख देने वाली, अच्छी प्रकार बनाई गई, सुन्दर यन्त्रों से युक्त, दृढ़, विद्युत्सम्बन्धी नौका अर्थात् विमान के ऊपर, हम लोग सुख के लिये चढ़ें ॥१६॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये,
त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम ,
शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥

हे पूजनीय विद्वानो ! हमारी रक्षा के लिये आप उपदेश किया करें । पीड़ा देने वाली दुर्गति से, शत्रुता से रक्षा और

सुख के लिये हम आपको बुलाया करें ॥१७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुति
मपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवाद्द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः ।
शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

हे विद्वानो ! रोगादि और लोभ-बुद्धि को पृथक् करो । पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की दुष्ट बुद्धि को दूर करो, दोष करने वाले सब को हम से पृथक् करो, हमारे लिये बहुत सुख हो ॥१८॥

अरिष्टः स मर्त्तो वि'व एधते, प्र प्रजा-
भिर्जायते धर्मणस्परि । यमादि-
त्यासो नयथा सुनीतिभिरति
विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥

जिन पुरुषों को अच्छी नीतियों से, पापों का उल्लंघन करके सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने की इच्छा होती है, वे सब पुरुष किसी से पीड़ित न हो कर बढ़ते हैं, धर्मानुष्ठान के बाद पुत्र-पौत्रादिकों से भली भांति बढ़ते हैं ॥१६॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ, यं
शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरि-
ष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०॥

हे विद्वान् लोगो ! अन्न के लिए जिस रमणीय, गमन-साधन वाष्पयानादि की

रक्षा करते हो और धन के कारण संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो, बड़े यंत्रालय के विद्वानों से भी सेवनीय, उसी रथ पर हम कल्याण के लिये चढ़ें ॥२०॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु,
स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु,
स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥२१॥

हमारे लिये राज-मार्ग में कल्याण हो, जलरहित देश में जलाशय काल्याणकारी हो, सब आयुधों से युक्त शत्रुओं को दबाने वाली सेना में कल्याण हो, पुत्रों के उत्पन्न करने वाले उत्पत्ति स्थान में कल्याण हो, और गौआदि के लिये

कल्याण हो ॥२१॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा,
रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु,
स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥

जो समुद्र और पृथ्वी चलने वालों के लिये कल्याणकारिणी होती है, जो अति सुन्दर धन वाली है, जो यज्ञ को प्राप्त होती है, वह समृद्धि हमारे गृह की रक्षा करे। वही वन आदि देशों में रक्षिका हो।

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ,
देवो वः सविता प्रार्पयतु,
श्रेष्ठतमाय कर्मण
आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं ।

प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा,
मा व स्तेन ईशत माघशँ सो
ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात,
बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥

हे ईश्वर! अनादि इष्ट पदार्थों और बलादि के लिये हम आपका आश्रय लेते हैं। हे जीवो! तुम वायु सदृश पराक्रम वाले हो। सब जगत् का उत्पादक देव, यज्ञ रूप श्रेष्ठ कर्म के लिये तुमको प्रेरणा करे। उस यज्ञ द्वारा अपने ऐश्वर्य को बढ़ाओ। न मारने योग्य, बछड़ों वाली, यक्ष्मा (तपेदिक) आदि रोगों से शून्य गौओं का, तुम लोगों में जो चौर्यादि दुष्ट

गुणों से युक्त हो, स्वामी न बने। अन्य पापी भी उनका रक्षक न बने। ऐसा यत्न करो जिससे बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौएँ गोरक्षक के पास ठहरी रहें। परमात्मा से प्रार्थना करो कि यज्ञ के करने वाले के पशुओं की, हे ईश्वर ! तुम रक्षा करो ॥२३॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो
ऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्न
प्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥

हमें शुभ संकल्प प्राप्त हों। सर्वोत्तम दुःखनाशक विद्वान् लोग सर्वदा वृद्धि के लिए ही हों। उन्हें प्रतिदिन प्रमादशून्य

रक्षा करने वाले बनाओ ॥२४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां,
देवानाँ रातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवानाँ सख्यमुपसेदिमा वयं
देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५

सरलतया आचरण करने वाले, विद्वानों की कल्याण करने वाली, अच्छी बुद्धि हमें प्राप्त हो, विद्वानों से विद्यादि पदार्थों का दान प्राप्त हो, विद्वानों के मित्रभाव को हम प्राप्त हों, जिससे कि वे हमारी अवस्था को दीर्घकाल जीने के लिये बनावें ॥२५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं,
धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे,
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

हम लोग ऐश्वर्य वाले, चर-अचर और जगत् के पति परमात्मा की, अपनी रक्षा के लिये स्तुति करते हैं, जिससे कि वह पुष्टिकर्ता ज्ञानादि धनों की वृद्धि करे। रक्षक और कार्यों का साधक परमात्मा हमारा कल्याण करे ॥२६॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः,
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥

परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर युक्त हमारा कल्याण

करे! पुष्टिकर्त्ता, सर्वज्ञ, ईश्वर हमारा कल्याण करे! तीक्ष्ण तेजस्वी, दुःखहर्त्ता ईश्वर हमारा कल्याण करे! बड़े-बड़े पदार्थों का पति हमारा कल्याण करे ॥२७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा,
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥

विद्वान् लोगो! हम कानों से शुभ ही सुनें, नेत्रों से अच्छी वस्तुओं को देखें। दृढ़ अङ्गों से परमात्मा की स्तुति करने वाले हम लोग, शरीरों से अथवा मर्यादा के साथ विद्वानों के लिए कल्याणकारी जो आयु है उसको अच्छी प्रकार प्राप्त हों ॥२८॥

अग्न आयाहि वीतये
गृणानो हव्य दातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२६॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! ज्ञान के लिए प्रशंसित, आप भक्ति-दान देने को प्राप्त होवें। सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप, यज्ञादि शुभ कर्मों में स्मरणादि द्वारा, हमारे हृदयों में स्थित होवें ॥२६॥

त्वमग्ने यज्ञाना ᳪ
होता विश्वेषाᳪ हितः
देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥

हे पूजनीय ईश्वर! आप छोटे-बड़े सब शुभकर्मों के उपदेष्टा हैं। विद्वान् लोगों से

आप विचारशील पुरुषों में उपास्य रूप से स्थापित किये जाते हैं ॥३०॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति,
विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां,
तन्वोऽद्य दधातु मे ॥२१॥

तीन रजस्, तमस् और सत्वगुण तथा सात ग्रह, अथवा तीन-सात (इक्कीस) अर्थात् ५महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५कर्मेन्द्रिय १ अन्तःकरण, जो सब चराचरात्मक वस्तुओं का अभिमत फल दे कर पोषण करते हुए यथोचित विद्यमान् रहते हैं, उनके सम्बन्धी मेरे शरीर में बलों को आज, हे वाणी के पति परमेश्वर! धारण करो ॥२१॥

[स्वस्ति-वाचन समाप्त]

अथ शान्तिप्रकरणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः,
शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या
शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः,
शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥१॥

हे ईश्वर ! बिजली और अग्नि रक्षा-सामग्री के द्वारा हमें सुखकारक हों, बिजली और जल हमें सुखकारी हों, सूर्य और चन्द्रमा कल्याण के लिये रोग-नाशक और भय-निवर्तक हों। बिजली और पवन पराक्रम के लिये सुखदायक हों ॥१॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु,
शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।

शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः,
शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ।।२।।

भगवान्! हमारा ऐश्वर्य शान्तिदायक हो, हमारी प्रशंसा शान्तिदायक हो। हमारी बुद्धि शान्तिदायिका हो, सब प्रकार के धन शान्तिदायक हों। शासन शान्तिदायक हो। श्रेष्ठों का मान करने वाला न्यायकारी भगवान् शान्तिदायक हो ।।२।।

शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु,
शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः,
शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ।।३।।

धारण कहने वाले ईश्वर हमें शान्तिकारक हों। दिशायें हमें बहुत अन्नों से

शान्तिकारक हों। बहुत विस्तार वाले भूमि और सूर्य दोनों शान्तिकारक हों। मेघ अथवा पहाड़ शान्तिकारक हों। विद्वान् जनों के सुन्दर बुलावे हमें शान्ति-कारक हों ॥३॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु,
शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु,
शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥

प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर हमारे लिये शान्तिकारक हों। दिन और रात हमारे लिये सुखकारक हों। सूर्य और चन्द्रमा शान्तिकारक हों, शुभकर्म हमारे लिए शान्तिकारक हों। पवन हमारे चारों ओर चले ॥४॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ,
शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु,
शं नो रजसस्पतिरस्तु: जिष्णुः ॥५॥

कार्य के आरम्भ में सूर्य, भूमि और मध्यलोक शान्तिदायक हों। औषधियां अन्नादि और वन के पदार्थ हम को शांतिदायक हों ॥५॥

शम इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु,
शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः,
शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिहि शृणोतु ॥६॥

सूर्य हमें सुखदायक हो, जल सूर्य की किरणों के साथ सुखदायक हो। ज्ञानदाता

आचार्य नियमों द्वारा हमें सुखदायक हो, परमेश्वर हमारी वाणियों द्वारा हमारी प्रार्थना सुनें ॥६॥

शं नः सामो भवतु ब्रह्म शं नः,
शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञा. ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु,
शं नः प्रसवः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

सौम्यस्वभाव ब्राह्मण हमें शांतिदायक हो । परमेश्वर हमें शांतिदायक हो । यज्ञ सुखदायक हों । औषधियां हमें सुखदायक हां और वेदि सुखदायक हो ॥७॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु,
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु,
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

सूर्य हमें सुखदायक हो, चारों दिशायें सुखदायक हों, पहाड़ सुखदायक हो, समुद्र सुखदायक हों और जल वा प्राण सुखदायक हों ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः,
शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु,
शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥६॥

वेद विद्या और धरती हमें सखदायक हों, विद्वान् लोग सुखदायक हों। सूर्य सुखदायक हो। भूमि सुखदायक हो। अन्तरिक्ष और जल सुखदायक हों और पवन सुखदायक हो ॥६॥

शन्नो देवः सविता त्रायमाणः,
शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः,
शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

रक्षक प्रभु हमें सुखदायक हों। जगमगाती हुई प्रभात वेलायें सुखदायक हों। बादल सुखदायक हों, क्षेत्र-पति किसान सुखदायक हों ॥१०॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु,
शं सरस्वती सह धीभिरस्तु,
शमभिषाचः शमु रातिषाचः,
शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ।११।

विद्वज्जन सुखदायक हों, वेद-विद्या सुखदायक हो। दानी सुखदायक हों।

आकाश और पृथ्वी के पदार्थ हमें सुख-दायक हों, जल सम्बन्धी पदार्थ हमें सुखदायक हों ॥११॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु,
शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः,
शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

सत्यवक्ता हमें सुखदायक हों। घोड़े और गायें सुखदायक हों। बुद्धिमान्, बड़े-बड़े काम करने वाले, हस्तकार्य में चतुर लोग हमें यज्ञों में सुखदायक हों ॥१२॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु,
शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।

शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु,
शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥१३॥

जगत्पाद, अजन्मा, व्यापक, भगवान् हमें शान्तिदायक हो। न हारने वाला सब मूल तत्वों का साधक हमें शान्तिदायक हो। सब को सींचने वाला ईश्वर शान्ति-दायक हो। प्रजाओं को पार करने वाला, विद्वानों का रक्षक परमेश्वर हमें शांतिदायक हो ॥१३॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नो अस्तु
द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

परमेश्वर! आप दो पांव वाले मनुष्य आदि के लिये और चौपाए, गौ आदि पशुओं के लिए शान्तिदायक हों ॥१४॥

शं नो वातः पवताᳬं
शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः,
पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१५॥

परमेश्वर ! पवन सुखकारी हो । सूर्य हमको सुखकारक रूप में तपावे । उत्तम गुण वाले बादल हमारे लिये सब ओर से वर्षा करें ॥१५॥

अहानि शं भवन्तु नः,
शᳬं रात्रीः प्रतिधीयताम्
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः
शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥१६॥

परमात्मन्! दिन और रात सुख के लिए हों। बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि दोनों रक्षा-सामग्री से हमें सुखकारक हों। जल, बिजली और पृथ्वी अन्नों के लाभ से हमें सुखकारी हों। सुखदायक बिजली और पृथ्वी, उत्तम धन के लिए रोगनाशक और भय-निवर्त्तक हों ॥१६॥

शं नो देवीरभिष्टये,
आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१७॥

शान्तिदात्री जगन्माता हमारे अभीष्ट की पूर्ति और भक्तिरस का पान कराने के लिए हमारे लिए शान्तिदायिनी हो। वह हमारे चारों ओर शान्ति की वर्षा करे और रोग दुःखमय शोकादि को दूर करदे ॥१७॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः
पृथ्वी शान्तिरापः शान्ति-
रोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्ति-
र्विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः
सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥

सूर्य आदि लोक सुखदायक हों। मध्यलोक सुखदायक हो। भूलोक सुखदायक हो। औषधियां सुखदायक हों। वृक्ष सुखदायक हों। दिव्य पदार्थ सुखदायक हों। ईश्वर, वेदविद्या वा जितेन्द्रियता सुखदायक हों। सब कुछ सुखदायक हो। शान्ति भी सच्ची शांति हो। ऐसी शांति मुझ को प्राप्त हो ॥१८॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदःशतꣳ
शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः शतं,
भूयश्च शरदः शतात् ॥१६॥

सब को देखने वाले, विद्वानों के हितकारी, प्रलय से पूर्व विद्यमान्, परब्रह्म को सौ वर्ष तक हम सुनते रहें । सौ वर्ष तक बोलते रहें । सौ वर्ष तक स्वतन्त्रता से रहें । सौ वर्ष से अधिक भी हम ऐसा ही व्यवहार करते रहें ॥१६॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२०॥

हे परमात्मन्! जो जागते हुए पुरुष का दिव्य गुण वाला मन दूर चला जाता है और वही मन सोए हुए का उसी प्रकार चलता रहता है। जो दूर-दूर ले जाने वाला विषय-प्रकाशक इन्द्रियों का एक प्रकाशक है, वह मेरा मन धार्मिक विचार वाला हो ॥२०॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो,
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२१॥

जिस मन द्वारा कर्म के जानने वाले

धीर पुरुष यज्ञ अर्थात् धर्म-व्यवहार में कामों को करते हैं और जो प्राणियों के भीतर अद्भुत और पूजनीय हैं, वह मेरा मन शुभ विचार वाला हो ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च,
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते,
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२२॥

जो मन ज्ञान का उत्पादक, स्मरण-शक्ति और साधारण शक्ति का आधार है, जो जीती-जागती ज्योति, प्राणियों के भीतर है, जिसके बिना कुछ भी काम नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुभ विचार वाला हो ॥२२॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्-
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता,
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२३॥

प्रभो ! जिस अमर मन के द्वारा तीनों काल का सब वृत्तांत सर्वथा जाना जाता है, जिसके द्वारा सात हवन करने वालों से पूरा किया हुआ पूजनीय कर्म फैलाया जाता है, वह मेरा मन शुभ सङ्कल्प वाला हो ॥२३॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्,
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां,
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४॥

परमात्मन् ! जिस मन में चारों वेदों का ज्ञान इस प्रकार विद्यमान है जैसे रथ के पहिये में अरे अटके रहते हैं; जिसमें प्राणियों का सब विचार बना हुआ है, वह मेरा मन भलाई का ही विचार करने वाला हो ॥२४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या-
न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं,
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥

प्रभो ! जो मन मनुष्य को लगातार लिये फिरता है, जैसे चतुर सारथि बागडोर से वेग वाले घोड़ों को। जो हृदय में ठहरा हुआ सब का चलाने वाला, बड़ा ही वेग वाला है, वह मेरा मन मंगल

विचार युक्त हो ॥२५॥

स नः पवस्व शं गवे,

शं जनाय शमर्वते ।

शं राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥

हे परमेश्वर ! गौओं और मनुष्यों की रक्षा के लिये, अन्न और सोम आदि औषधियों की रक्षा के लिये हमें सामर्थ्य दो ॥२६॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं

द्यावापृथिवी उभे इमे ।

अभयं पश्चादभयं पुरस्ता-

दुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

हे भगवन् ! हमें मध्य-लोक अभय करे, पश्चिम में अभय हो । उत्तर और दक्षिण

में हमारे लिये अभय हो ॥२७॥

अभयं मित्रादभयमित्रा-
दभयं ज्ञातादभयं पुरोयः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥

अभय प्रभो ! हमें मित्र से और अजानकार से अभय हो, दिन और रात हमें निर्भयता प्राप्त हो। सब दिशाओं के निवासी प्राणी मेरे मित्र वा हितकारी हों ॥२८॥

इति शांति प्रकरणम् ।

सामान्य-प्रकरणम्

१—आचमन-मन्त्र

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा

हे भगवन्! यह सुखप्रद जल सब का आश्रयभूत है, यह कथन शुभ हो ॥१॥

हे अमर परब्रह्म! तू जगत् का सर्वथा धारण करने वाला है ॥२॥

हे परमेश्वर! सत्यकर्म, यश, सम्पत्ति और ऐश्वर्य मुझ में विराजमान हों ॥३॥

२—अङ्ग-स्पर्श-मन्त्र

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ॥१॥ (मुख)

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥२॥ (नाक)
ओं अच्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥ (आँखें)
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ (कान)
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥ (भुजाएँ)
ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥६॥ (जंघा)
ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा
मे सह सन्तु ॥७॥ (शरीर)

मेरे मुख में बोलने की शक्ति रहे ॥१॥
मेरे दोनों नथनों में श्वास-शक्ति रहे ॥२॥
मेरी दोनों आंखों में दृष्टि रहे ॥३॥
मेरे कानों में श्रवण-शक्ति रहे ॥४॥
मेरी भुजाओं में बल हो ॥५॥
मेरी जंघाओं में बल रहे ॥६॥
परमेश्वर ! मेरे अङ्ग रोग-रहित और

पुष्ट हों, ये सदा शरीर के साथ रहें ॥७॥

३—अग्न्याधान-मंत्र

निम्नलिखित मन्त्र से अग्नि प्रदीप्त करें:-

[विदेशी कपूर यथासम्भव न बरतें, सुनते हैं उसमें अपवित्र पदार्थों का योग होता है। अच्छा हो, यदि समिधा को घृत लगाकर अग्नि को प्रदीप्त किया जाय।]

ओं भूर्भुवः स्वः ।
ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना
पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि
पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥

ईश्वर-कृपा से उस अग्नि को प्रदीप्त

करता हुआ मैं भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ-लोक को अपने अनुकूल बनाता हूं। यह बोलकर अग्नि को कुण्ड में रक्खो। परमेश्वर सब का आधार, सब में व्यापक सुखस्वरूप है। वह परमेश्वर बृहत्व के कारण आकाश के समान और फैलाव में पृथ्वी के समान है। हे भगवन्! यह पृथ्वी, जो देवताओं का यज्ञ-स्थान है, उसकी पीठ पर हव्य खाने हारे भौतिक अग्नि को खाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिये मैं स्थापित करता हूं ॥१॥

अगले मन्त्र से अग्नि को खूब जलाओ:-

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च।

अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्,
विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥२॥

हे विद्वान् यजमान् ! तू उत्तम रीति से चैतन्य को प्राप्त हो और प्रत्यक्ष जागृत हो। हे यजमान ! तू और यज्ञ, दोनों इष्ट अर्थात् वेदाध्ययन, अतिथ्य आदि और पूर्त अर्थात् प्याऊ, बगीचा, धर्मशाला आदि कर्म करो। हे सब विद्वान् जनो ! आप इस उत्तम समाज में अधिकारपूर्वक बैठो ॥२॥

५—समिदाधान-मन्त्र

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्ते-
नेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय

चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसे-
नान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥
इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥१॥

ओं समिधाग्निं दुवस्यत
घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्याजुहोतन ॥२॥

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे ।
घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥
इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥३॥

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो

घृतेन वर्धयामसि ।

बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा ।

इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदं न मम ॥४॥

(आठ-आठ अंगुल लकड़ी की ३ समिधा घृत में भिगोकर 'पहले' मन्त्र से 'पहिली' 'दूसरे' व 'तीसरे' से दूसरी और चौथे मन्त्र से तीसरी समिधा कुण्ड में डालो ।)

हे सब पदार्थों में विद्यमान् परमेश्वर ! यह मेरा आत्मा तेरे लिए ईंधन रूप है । इससे मुझमें तू प्रकाशित हो और यह अवश्य ही बढ़े । हमको तू पुत्र-पौत्र, सेवक आदि प्रजा से, गौ आदि पशुओं से, वेद-विद्या के तेज से, भोग्य धान्य, घृत आदि अन्न से, समृद्ध कर । यह सुन्दर

आहुति है। यह ज्ञानरूप परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं ॥१॥

ईंधन से और घृत से व्यापनशील अग्नि को तुम सब पूजो और चेताओ। इसमें हवन-सामग्री को यथाविधि डालो। यह सुन्दर आहुति है। यह परमेश्वर के लिए है, यह मेरे लिए नहीं ॥२॥

(ऊपर का या दूसरा मन्त्र जो सारा नहीं पढ़ा जाता, पूर्ण पढ़ना चाहिए)

अच्छे प्रकार प्रदीप्त, संशोधक पदार्थों में विद्यमान् अग्नि में तपाया हुआ घृत डालो। यह सुन्दर आहुति परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं ॥३॥

इस व्यापनशील अग्नि को ईंधनों और घृत से प्रदीप्त करते हैं। यह जो

संयोजक है यह बहुत प्रज्वलित है। यह सुन्दर आहुति परमेश्वर के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥४॥

६—घृताहुति-मन्त्र

स्रुवा को अंगुष्ठ, मध्यमा और अनामिका से पकड़ ६ माशे की घृताहुति देवें। जिन मन्त्रों के साथ (इदं न मम) यह प्रयोग है, उस प्रत्येक आहुति से स्रुवा के बचे घृत को जलपात्र में इकट्ठा करते जायें और यज्ञ-समाप्ति पर मुख आदि अङ्गों पर मल लेवें।

इस मन्त्र से पांच घृत की आहुति देदें:—

अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्,
तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय,

चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-
वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।
इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ।

(इसका अर्थ पृष्ठ २६९ पर देखिए ।)

७—जलप्रसेचन (परिखा) मन्त्र

दाहिनी अञ्जलि में जल लेके इन मन्त्रों से वेदी के चारों ओर क्रम से 'पूर्व' 'पश्चिम', 'उत्तर' तथा दक्षिण' से आरम्भ कर, फिर सब ओर जल छिड़कें ।

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥१॥ (पूर्व)
ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥२॥ (पश्चिम)
ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥३॥ (उत्तर)
ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं,

प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः
पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥४॥

हे अखण्ड परमेश्वर! आप हमारे अन्दर यज्ञ की स्वार्थ-त्याग और परोपकार-भावना को उत्पन्न करें ॥१॥

हे हितकारी बुद्धि वाले ईश्वर! आप हमें भी हितकारिणी मति दीजिये ॥२॥

सब विद्याओं के भंडार जगदीश्वर! आप प्रसन्न होकर हमें प्रसन्नता दो ॥३॥

हे प्रकाशमय, सब के चलाने हारे परमेश्वर! इस यज्ञ या उत्तम कर्म को आगे बढ़ाओ और यज्ञ के रक्षक यजमान को ऐश्वर्य की सिद्धि के लिए आगे बढ़ाओ। अद्‌भुत् स्वभाव, विद्याओं के

आधार, बुद्धि शुद्ध करने हारे परमेश्वर हमारी बुद्धि को शुद्ध करो। विद्या के स्वामी परमात्मन्! हमारी वाणी को मधुर करो ॥४॥

८—आघारावाज्याहुति-मन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा

इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥ (उत्तर)

ओं सोमाय स्वाहा

इदं सोमाय इदं न मम ॥२॥ (दक्षिण)

(इन मन्त्रों से घृताहुति देवें—पहले से 'उत्तर' भाग में और दूसरे से 'दक्षिण' में, एक-एक आहुति दें।)

यह प्रभु के लिये आहुति है, मेरे लिए नहीं ॥१॥

सौम्यस्वभाव परमेश्वर के लिये यह सुन्दर आहुति है, मेरे लिए नहीं ।।२।।

६—आज्यभागाहुति—मन्त्र

इससे मध्य में घृताहुति देवें :—

ओं प्रजापतये स्वाहा ।
इदं प्रजापतये इदन्न मम ।।१।।
ओं इन्द्राय स्वाहा ।
इदमिन्द्राय इदन्न मम ।।२।।

प्रजापालक ईश्वर के लिये यह आहुति है, मेरे लिए नहीं ।।१।।

परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं ।।२।।

———

दैनिक अग्निहोत्र

१०—प्रातःकाल के मन्त्र

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥
ओं सूर्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥
ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्योज्योतिः स्वाहा ।३।
ओं सजूर्देवेन सवित्रा,
सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

चराचर के आत्मा ! प्रकाशस्वरूप, सूर्यादि लोकों के प्रकाश की प्रसन्नता के लिए हम होम करते हैं ॥१॥

जो सूर्य, परमेश्वर, हमको विद्याओं का देने वाला, और हमसे उनका प्रचार

करने वाला है, उसी के अनुग्रह से हम होम करते हैं ॥२॥

जो स्वयं प्रकाशमान् और जगत् का प्रकाश करने वाला सूर्य अर्थात् परमेश्वर है, उसकी प्रसन्नता के लिए हम होम करते हैं ॥३॥

जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्यापक वायु और दिन के साथ परिपूर्ण, सबसे प्रीति करने वाला है, वह हमको विदित हो। उसके लिए हम होम करते हैं ॥४॥

११—सायंकाल के मंत्र

ओंअग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निःस्वाहा ॥१॥
ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥
ओंअग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निःस्वाहा ॥३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा, सजूरात्र्येन्द्र
वत्याजुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

तीसरे को मन में पढ़कर आहुति डालो।

अग्नि ज्योति है, जितना प्रकाश है, वह अग्नि का है। जो अग्नि परमेश्वर है, उसी की विभूति है ॥१॥

अग्नि दीप्ति है, यह ज्योतिस्वरूप परमात्मा की ही दीप्ति है ॥२॥

तीसरे का अर्थ पहले के समान समझो ॥३॥

प्रकाशमान् सर्वप्रेरक प्रभु का सायंकाल के सूर्य के रूप में वर्तमान विभूति के साथ तथा ऐश्वर्ययुक्त रात्रि के साथ समान प्रीतियुक्त सेवन की जाती हुई आग, जो सामने है, उसमें प्रभु प्राप्त हों,

और हमारा यह यज्ञ सफल हो ॥४॥

१२—सायं-प्रातः के मन्त्र

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ।

इदमग्नये प्राणाय इदं न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।

इदं वायवेऽपानाय-इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।

इदमादित्याय व्यानाय-इदं न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः

प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः

प्राणापानव्यानेभ्य इदं न मम ॥४॥

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं,

ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥
ओं यां मेधां देवगणाः
पितरश्चोपासते
तया मामद्य मेधयाऽग्ने,
मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥
ओं विश्वानि देव सवितर्
दुरतानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥
ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो, भूयिष्ठां
ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥

परमेश्वर सर्वाधार है, उत्तम प्रभाव

और श्वास की स्वस्थता के लिये यह सुन्दर आहुति है। यह प्राण वायु के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥ १ ॥

परमेश्वर सर्वव्यापी है। पवन के प्रभाव के लिये और प्रश्वास की स्वस्थता के लिये यह सुन्दर आहुति है। यह अपानवायु के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥ २ ॥

परमेश्वर सुखस्वरूप है, सूर्य के उत्तम तेज और सब शरीर में घूमने वाली वायु की स्वस्थता के लिये यह सुन्दर आहुति है। यह सूर्य और व्यान के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥ ३ ॥

परमेश्वर सर्वाधार, सर्वव्यापी और सुखस्वरूप है। अग्नि, वायु और सूर्य के उक्त प्रभाव के लिये और प्राण, अपान,

ध्यान के लिये यह सुन्दर आहुति है, मेरे लिये नहीं है ॥ ४ ॥

सर्वरक्षक परमेश्वर, सर्वव्यापी, ज्योतिःस्वरूप, जगत् का बीज, अमर, सब से बड़ा, सर्वाधार, सर्वव्यापक और सुखस्वरूप है ॥ ५ ॥

जिस शुद्ध बुद्धि का, विद्वान् जन और माननीय रक्षक महात्मा लोग आश्रय लेते हैं उस शुद्ध बुद्धि से, हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! मुझको आज बुद्धिमान् करो ॥ ६ ॥

(सातवें और आठवें मंत्र का अर्थ 'ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना' में देखिये)

इस क्रिया के पश्चात् यदि घी सामग्री बच रहे तो गायत्री मंत्र से आहुतियां दें ।

पूर्णाहुति-मंत्र

इस मंत्र से तीन बार स्रुवा को घृत से भरकर आहुति दें।

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा।

शेष-सामान्य-प्रकरणम्

विशेष अथवा बड़ा अग्निहोत्र करना हो, तो आज्यभागाहुतियों (ओं इन्द्राय स्वाहा) के पश्चात् निम्न मंत्रों से होम करें।

१—महाव्याहृति मन्त्र

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये-इदन्नमम ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे-इदन्न मम।२। ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा इदमादित्याय व्यानाय इदन्नमम ॥३॥ ओं भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यःस्वाहा इदमग्निवाय्वादित्येभ्य इदन्न मम ॥४॥

अर्थ—सर्वाधार अग्नि के लिये, दुःख-नाशक वायु समान व्यापक के लिये, सुखरूप, प्रकाशस्वरूप के लिए, सच्चे

हृदय से मैं आहुति देता हूं। प्रभो! आप स्वीकार करें ॥ ४ ॥

२—स्विष्टकृत्-आहुति-मन्त्र

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं
यद्वा न्यूनमिहाकरम्
अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्,
सर्वंस्विष्टं सुहुतं करोतु मे,
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते,
सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां,
कामानां समर्द्धयित्रे,
सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा।
इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम ॥

अर्थ—मैं जो कुछ इस कर्म के संबंध में विधि से अधिक कर चुका हूँ, वा

इसमें न्यून कर बैठा हूँ, यज्ञ को पूर्ण करने वाला भौतिक और आध्यात्मिक अग्नि मेरे यज्ञ को अच्छी प्रकार किया हुआ करे।

अग्नि के लिये, जो यज्ञ को ठीक बनाने वाला, आहुति को ठीक करने वाला, प्रायश्चित्त और सब कामनाओं को सफल करने वाला है, यह आहुति देता हूँ।

हे अग्ने! हमारी सारी कामनाओं को परिपूर्ण करो। मेरी वाणी सत्य हो। यह स्विष्टकृत् अग्नि के लिये समर्पण कर चुका हूं, इस पर मेरा स्वत्व नहीं।

३—प्रजापत्याहुति-मंत्र

ओं प्रजापतये स्वाहा।

इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।

(यह मंत्र भी मन में ही पढ़ना चाहिये)

अर्थ—यह आहुति प्रजापति परमात्मा के लिये है, मेरे लिये नहीं ।

४—प्रधान-होम सम्बन्धी

आज्याहुति मंत्र

ओं भूर्भुवः स्वः ।

अग्न ! आयूंषि पवस्व,

आ सुवोर्ज्जमिषं च नः ।

आरे बाधस्व दुच्छुनां, स्वाहा ॥

इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥१॥

अर्थ—हे सर्वाधार, दुःखनाशक सुखस्वरूप, प्रकाशस्वरूप भगवान् ! आप हमारे जीवनों को पवित्र करते तथा बढ़ाते

हो। हमें बल और अन्न प्रदान करो। राक्षसों को दूर भगाओ। मेरी यह वाणी सत्य हो। यह हवि, पवित्र करने वाले प्रभु के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥ १ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः।

अग्निर्ऋषिः पवमानः,

पाञ्चजन्यः पुरोहितः।

तमीमहे महागय स्वाहा।

इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥२॥

अर्थ—जो अग्नि सब को देखने वाला, पवित्र करने वाला, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और आर्य वर्ण से बाहिर भी सब प्रजाओं के पालन करने वाला, सब धार्मिक कार्यों में प्रमुख होकर सहायता करने वाला, अत्यन्त बल-

वान् है, उसे हम सब धर्म-कर्म की सफलता के लिये प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः

अग्ने पवस्व स्वपा,

अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।

दधद्रयिं मयि पोष स्वाहा ।

इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थ—हे सर्वाधार, दुःखापहारक, प्रकाशमान प्रभो ! आप अच्छे कर्मों के अधिष्ठाता हैं। आप हममें तेजपूर्ण ऐश्वर्य और पुष्टि धारण करते हुए पवित्र करें ॥ ३ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो,

विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ।
इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥ ४ ॥

इसका अर्थ 'ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना' मन्त्रों में देखो ॥ ४ ॥

५ — अष्टाज्याहुति-मंत्र

ओं त्वन्नोऽग्ने वरुणस्य विद्वान्,
देवस्य हेलोऽअवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो,
विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ।
इदमग्नीवरुणाभ्याम्-इदन्न मम ॥१॥

हे अग्ने ! सुखस्वरूप ! परमात्मा !

आप कर्मों के फलदाता, क्रोध को जानने वाले! आप उस क्रोध को दूर करो, यजनशील तथा यज्ञेय भागों का वहन करने वाले आप अत्यन्त दीप्त होकर हमारे सम्पूर्ण पापों को दूर करो ॥ १ ॥

ओं स त्वन्नोऽग्नेऽवमो भवोती,
नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो,
वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ।
इदमग्नीवरुणाभ्याम्-इदन्न मम ॥२॥

अर्थ—हे अग्ने ! परमात्मन् ! हमारे सदा से रक्षक आप आज के प्रातःकाल के यज्ञादि की सिद्धि के लिये समीपवर्ती होवें । हमें श्रेष्ठ उपदेशक दीजिए और

इस प्रकार हमारे सुखदायक यज्ञीय भाग को प्राप्त कीजिये ॥ २ ॥

ओं इमं मे वरुण ! श्रुधी,
हवमद्या च मृलय ।
त्वामवस्युरा चक्रे स्वाहा ।
इदं वरुणाय-इदन्न म॰ ॥ ३ ॥

हे वरुण ! तुम आज मेरी इस प्रार्थना को सुनो और मुझे सुखी करो । रक्षार्थ मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं ॥ ३ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्
तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेलमानो वरुणेह बोध्यु-
रुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ।
इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

हे जगत्प्रभो ! हवि आदि देकर जिस आयु की, यजमान लोग तुम्हारा सत्कार करते हुये, आशा करते हैं उस ही प्रसिद्ध सौ वर्ष की आयु को मैं भी तुम से माँगता हूँ। हे महाराज ! उस आयु में से कुछ भी कम न कीजिये ॥४॥

ये ते शतं वरुण ये सहस्रं,
यज्ञियाः पाशाः वितताः महान्तः
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्-
विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ।
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो
देवेभ्योमरुद्भ्यःस्वर्केभ्यःइदन्न मम॥५॥

हे वरुण ! यज्ञ के जो सैंकड़ों और सहस्रों बड़े-बड़े विघ्न हैं उनसे आप और

विद्वान् लोग हमको दूर रक्खें ॥५॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्ति-

पाश्च सत्यमित्त्वमयासि,

अया नो यज्ञं वहासि,

अया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा।

इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥

हे कल्याणकारण अग्ने! तुम सब जगह व्यापक और कुत्सित कर्म करने वालों को पवित्र करने वाले हो। हे अग्ने! तुम हमारे यज्ञीय भागों को देवताओं के लिए वरण करते हो, हम को सुखकारक औषधि दीजिए ॥६॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्,

अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।

अथा वयमादित्य व्रते तवा
नागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥
इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽ-
दितये च-इदन्न मम ॥७॥

हे वरुण ! आप हमारे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट बन्धन को ढीला कीजिये और फिर हम लोग तुम्हारे शासन में पाप-कर्मों से अलग रह कर मुक्ति-सुख के लिये यत्न करते रहें ॥७॥

ओं भवतन्नः समनसौ,
सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं
जातवेदसौ शिवौ भवतमद्यनःस्वाहा
इदं जातवेदोभ्याम् इदन्न मम ॥८॥

वसो पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः
पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥१॥

८—प्रार्थना मन्त्र

ओं तेजोऽसि तेजोमयि धेहि,
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।
सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥१॥
ओं मयि मेधां मयि प्रजा-
मय्यग्निस्तेजो दधातु ।

मयि मेधां मयि प्रजां,
मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु ॥२॥
मयि मेधां मयि प्रजां,
मयि सूर्यो भ्राजो दधातु
ओं यत्ते अग्ने वर्चस्,
तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्
यत्ते अग्ने हरस्-
तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥३॥

१—हविशेष-घृत मर्दन मन्त्र

ओं तनूपा अग्नेऽसि, तन्वंमेपाहि ॥१॥
ओं आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मेदेहि ॥२॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चोमे देहि ॥३॥

ओं अग्ने यन्मे तन्वाऊनं तन्मआपृण ।४।
ओं मेधां मे सविता आद्दातु ।।५।।
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आददातु।।६।।
ओं मेधां मे अश्विनौ,
दवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ।।७।।
ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

मंगलाचरण-भजन

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया,
वाणी से जाये वह क्योंकर बताया ।
नहीं है यह वह रस जिसे रसना चाखे,
नहीं रूप उसका कभी दृष्टि आया ।
नहीं है यह वह गंध जो घ्राण जाने,
त्वचा से न जाए यह छूआ छुआया ।

संख्या में आना असम्भव है उसका,
दिशा काल में भी रहे न समाया।
तुझसा न दाता है तुझसा न दानी,
इतना बड़ा दान जिसने दिलाया।
आत्मोन्नति में तुम्हारी दया से,
मेरी ज़िन्दगी ने अजब पल्टा खाया।
सत् चित् आनन्द और अनन्त स्वरूप,
मुझे मेरे अनुभव ने निश्चय कराया।
गूंगे का रसना के सदृश 'अमीचन्द्र'
कैसे बताएँ कि क्या रस उड़ाया॥

पित्र-यज्ञ

पितृयज्ञ को 'श्राद्ध' और 'तर्पण' भी कहते हैं। श्राद्ध शब्द "श्रत्" धातु से बना है, जो सत्य का वाचक है। जिस काम से सत्य का ग्रहण किया जाय, वह "श्रद्धा" और श्रद्धा से जो सेवा की जाय, वह "श्राद्ध" कहाता है। जिस कर्म से माता-पितादि जीवित पितरों को तृप्त अर्थात् सुख-युक्त किया जाय, वह "तर्पण" है।

तर्पण, श्राद्ध विद्यमान् प्रत्यक्ष पितरों

का ही हो सकता है, मृतकों का नहीं; क्योंकि मिलाप हुये बिना सेवा नहीं हो सकती। मिलाप जीतों का ही हो सकता है, मृतकों का नहीं। अतएव 'पितर' शब्द से जीवित माता-पितादि बड़ों का अर्थ ग्रहण किया है।

पितृ-सेवा-प्रमाण

ओं ऊर्ज्जं वहन्तीरमृत घृतं पयःकीलालम्
परिस्त्रुतं स्वधःस्थ तर्पयत मे पितृन् ॥

अर्थ—हे ईश्वर परमात्मन्! (ऊर्ज्जं) बल-पराक्रम (वहन्तीं) देने वाले अमृतं). उत्तम रसयुक्त (घृतं) घी (पयः) दूध (कीलालं) पकवान (परिस्त्रुतम्) रस चूते पके फल (मे) मेरे (पितृन्) पितरों का (स्वधःस्थ) प्राप्त करा के (तर्पयत) तृप्त करते रहो जिससे वह सदा प्रसन्न

होकर मुझको सत्योपदेश सुनाते रहें।

२--पितर शब्द से पिता, माता, पितामह, मातामह, आचार्य, विद्वान् तथा ज्ञान में वृद्ध माननीय पुरुषों का ग्रहण होता है।

३—एक 'महापितृयज्ञ' भी होता है, जिसमें नीचे लिखे आठ प्रकार के पितरों की सेवा की जाती है :—

(१) सोमसद्-अर्थात् ब्रह्मविद्या के वेत्ता।
(२) अग्निष्वात्त-कला-कौशल ज्ञान वाले
(३) बर्हिषदाः—कृषि-विद्या के वेत्ता।
(४) सोमपा—वैद्यराज।
(५) हविर्भुजः—हवन-विद्या के वेत्ता।
(६) आज्यपाः—पशु विद्या के वेत्ता।
(७) सुकालिका—ब्रह्मविद्या के वेत्ता।
(८) यमराज—अर्थात् न्याय की व्यवस्था

बाँधने वाले, पक्षपात को छोड़ कर न्याय करने वाले, शुद्धाचरण रखने वाले, राज-सम्बन्धी अधिकारी पुरुष।

❀ पितृ-यज्ञ समाप्त ❀

भूत-यज्ञ

१. 'भूत-यज्ञ' का नाम 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' भी है, अर्थात् विश्वदेव जो परमेश्वर हैं, उनके निमित्त बलि देने का यज्ञ।

२. इसमें छः जीवों, अर्थात्—

(१) कुत्ते (२) पतित (३) भङ्गी आदि चाण्डाल (४) कुष्ठी आदि रोगी (५) कौवे (६) चिऊँटी आदि कृमि-कीट के लिये लवणान्न, जैसे दाल, भात, रोटी आदि की छः बलि दी जाती हैं।

३. बलिवैश्वदेव-यज्ञ में प्रमाण—

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तो,
ऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने,
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो,
मा ते अग्ने प्रतिवेशारिषाम् ॥

अर्थ—हे अग्ने परमेश्वर! जिस प्रकार शुभ इच्छा से हम लोग घोड़े के आगे खाने योग्य घास धरते हैं उसी प्रकार शुभ इच्छा से आपकी आज्ञानुसार नित्य प्रति बलिवैश्वदेव कर्म को प्राप्त होते हुए राज्यलक्ष्मी और घी, दूध आदि पुष्टि-कारक पदार्थों से हम आनन्दित रहें। हे परम गुरो! अग्ने-परमेश्वर! हम लोग आपके विरुद्ध कभी न चलें और न अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ित करें किन्तु सबको अपना मित्र समझ कर

उनका हित करते रहें।

४—पूर्वोक्त ६ प्राणियों के लिये निम्नलिखित ६ मंत्रों से भूमि पर बलि धरें:—

१. ओ३म् श्वभ्यो नमः ।

२. ओ३म् पतितेभ्यो नमः ।

३. ओ३म् श्वपचेभ्यो नमः ।

४. ओ३म् पापरोगिभ्यो नमः ।

५. ओ३म् वायसेभ्यो नमः ।

६. ओ३म् कृमिभ्यो नमः ।

५—भोजन बनाने पर घृत और मिष्टान्न मिश्रित भात, यदि भात न बना हो तो खारा और लवणान्न को छोड़कर जो कुछ ग्रास के समान हो, आगे लिखे दस मन्त्रों से अग्नि में डालें जो चूल्हे से निकाल कर अलग रखी हो।

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥२॥

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥३॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥

ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥५॥

ओं कुह्वै स्वाहा ॥६॥

ओं अनुमत्यै स्वाहा ॥७॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥८॥

ओं द्यावापृथ्वीभ्यां स्वाहा ॥६॥

ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥१०॥

अग्नि के लिये आहुति देते हैं ॥१॥

शान्तस्वरूप ईश्वर के निमित्त ॥२॥

अग्नि भगवान् जो जीवन का हेतु और

दुःख-विनाशक है उसके निमित्त० ॥३॥

विश्वपति और जगत्-प्रकाशक ईश्वर के निमित्त आहुति देते हैं ॥४॥

रोग-नाशक के लिये आहुति देते हैं ॥५॥

अमावसी यज्ञपति के निमित्त० ॥६॥

सूर्यादि प्रकाशमान और पृथ्वी आदि प्रकाशरहित लोकों के साथ जो ईश्वर सदा वर्तमान होकर उनको धारण कर रहा है, उसके निमित्त आहुति देते हैं ॥९॥

इष्ट सुख के दाता ईश्वर के निमित्त ॥१०॥

६—तत्पश्चात् निम्नलिखित सोलह मन्त्रों से सोलह दिशाओं आदि के लिये सोलह बलि पत्तल पर अथवा थाली में धरें। यदि बलि धरते समय कोई अतिथि आ जावे तो उसी को दे दें।

बलि के लिये सोलह मन्त्र

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥१॥ (पूर्व)

ओं सानुगाय यमाय नमः ॥२॥ (दक्षिण)

ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥३॥ (पश्चिम)

ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥४॥ (उत्तर)

ओं मरुद्भ्यो नमः ॥५॥ (द्वार)

ओं अद्भ्यो नमः ॥६॥ (जल)

ओं वनस्पतिभ्यो नमः॥७॥ (मूसल, ऊखल)

ओं श्रियै नमः ॥८॥ (ईशान)

ओं भद्रकाल्यै नमः ॥९॥ (नैर्ऋत्य)

ओं ब्रह्मणे नमः ॥१०॥ (मध्य)

ओं वास्तुपतये नमः ॥११॥ (मध्य)

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥१२॥

ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥१३॥
ओं नक्तं चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥१४॥
ओं सर्वात्मभूतये नमः ॥१६॥ (पीछे)
ओं पितृभ्यःस्वाधयिभ्यःस्वधानमः ।१६।

इन्द्र, ईश्वर के अनुयायी ऐश्वर्य-युक्त पुरुषों को नमस्कार हो ॥ १ ॥

यम, ईश्वर के अनुयायी सांसारिक न्यायाधीशों को नमस्कार हो ॥ २ ॥

ईश्वर-भक्तों को नमस्कार हो ॥ ३ ॥

पुण्यात्माओं को नमस्कार हो ॥ ४ ॥

प्राणपति ईश्वर को नमस्कार हो ॥ ५ ॥

सर्वव्यापक प्रभु को नमस्कार हो ॥६॥
वनस्पतियों के स्वामी को नमस्कार हो ॥ ७ ॥
पूजनीय ऐश्वर्ययुक्त को नमस्कार हो ॥ ८ ॥

कल्याणकारक शक्ति को नमस्कार हो ॥६॥

वेद के स्वामी प्रभु को नमस्कार हो ॥ १०॥

ईश्वर को नमस्कार हो ॥११॥

विश्वपति और प्रकाशस्वरूप ईश्वर को नमस्कार हो ॥१२॥

दिन में विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो ॥१३॥

रात्रि में विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो ॥१४॥

सर्वव्यापक को नमस्कार हो ॥१५॥

ज्ञानियों और स्वधा-हविदान के अधिकारियों को नमस्कार हो ॥ १६ ॥

—:०:—

अतिथि-यज्ञ

२—'अतिथि-यज्ञ' को ही 'नृयज्ञ' कहते हैं। जो विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, छल-कपट रहित, धार्मिक पुरुष देशाटन करता हुआ, अकस्मात घर में आ जावे, वह "अतिथि" कहाता है। ऐसे अतिथि का आदर सत्कार करके उससे सत्य उपदेश ग्रहण करने को, 'अतिथि-यज्ञ' कहते हैं।

प्रमाण

ओं तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो
ऽतिथिर्गृहानागच्छेत्
ओं स्वयमेनमभ्युपेत्य ब्रूयाद्

व्रात्य ! क्वावात्सीः व्रात्योदकं,
व्रात्य ! तर्प्पयन्तु,
व्रात्य ! यथा ते प्रियं तथास्तु,
व्रात्य ! यथा ते वशस्तथास्तु,
व्रात्य ! यथा ते निकामस्तथास्त्विति ।

अर्थ—जब विद्वान् घर में आ जावे, तब गृहस्थी स्वयं उठकर सम्मान-पूर्वक उसे मिले। उत्तम आसन पर बिठाकर पूजे, हे व्रात्य उत्तम पुरुष ! आपका निवास-स्थान कहां है ? जल लीजिये, हाथ मुँह धोइये। हम लोग प्रेम-भाव से आपको तृप्त करेंगे । जो पदार्थ आपको प्रिय हों, वही हम उपस्थित करेंगे। आपकी इच्छा को पूर्ण करेंगे। जैसी आपकी कामना हो वैसा ही होगा ॥ ५ ॥

प्यारे प्रभु से मिलाप

प्रातः और सायं सन्ध्या व हवन के पश्चात् प्रत्येक नर-नारी को अपने भक्ति-भाजन परमेश्वर से मिलाप करना चाहिये। उस समय उदार-हृदय से उस महाप्रभु से प्रार्थना करें, जो आपके रोम-रोम में रम रहा है। जैसे पुत्र पिता से अपने मन की प्रत्येक कामना प्रकट कर देता है, वैसे आप भी उस पिता को साक्षात् करके, उससे अपनी प्रत्येक शुभ इच्छा प्रकट करो, जो कुछ मांगना है, उससे माँगो। वह आपकी प्रत्येक शुभ इच्छा पूरी करेगा। सच्ची श्रद्धा

और विश्वासयुक्त प्रार्थना से हृदय में शान्ति की धारा और आत्मा में आनन्द की वृष्टि होगी और थोड़े काल के अभ्यास से ही आपको अनुभव होगा कि आपके जीवन में प्रतिदिन कितना परिवर्तन हो रहा है। पाठकों की सुगमता के लिये दो चार प्रार्थनायें आगे लिखी जाती हैं। अपने पुरुषार्थ के अनन्तर परमदेव परमात्मा से सहायता की इच्छा करना 'प्रार्थना' है। वास्तव में प्रार्थना वेदमन्त्रों द्वारा ही करनी चाहिये। अपने शब्दों द्वारा की हुई प्रार्थना में उतना बल कदापि नहीं आ सकता। परन्तु वेदमन्त्रों का रटना मात्र ही पर्याप्त नहीं। प्रत्येक शब्द में

जो उसका अर्थ है, उस शब्द के साथ ही उस अर्थ का ध्यान करना चाहिये। इसलिये यहां कुछ मन्त्र देकर उनका अर्थ तथा व्याख्या दी जाती है।

१—प्रार्थना

ओं स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्,
अस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतो
ऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः॥१॥
न तत्र चक्षुर्गच्छति,
न वाग्गच्छति नो मनः ॥ २ ॥
यस्यामतं तस्य मतं,
मतं यस्य न वेद सः।

अविज्ञातं विजानतां,

विज्ञातमविजानताम् ॥३॥

त्वं हि नः पिता वसो !

त्वं माता शतक्रतो ! बभूविथ,

अथा ते सुम्नमीमहे ॥४॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः,

सर्वे सन्तु निरामयाः,

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,

मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ॥५॥

भगवन् ! आप हमारे परम पिता हो, सर्वथा सुख के देने वाले हो । दुष्टों के अत्याचार से बचाकर हम को स्थिर

करने वाला सुख प्रदान कीजिये। हमको उत्तम बुद्धि और पराक्रम प्रदान कीजिये। हम जो कुछ मांगेगे, आप ही से मांगेंगे, क्योंकि सब सुखों के दाता आप ही हैं। हमको केवलमात्र आपका ही आश्रय है ॥ १ ॥

हे दयामय! आप ऐसी कृपा करें कि हम आपको छोड़कर और किसी के द्वार पर न जायें। आपका स्वभाव है कि आप अपने शरणागत को नहीं त्यागते, वरन् सदैव रक्षा करते हैं। हमें भी पूर्ण निश्चय है, कि आप हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करेंगे ॥२॥

भगवन्! आप ऐसे कृपालु और दयालु हैं कि जो पुरुष तन, मन और धन से आपकी भक्ति करता है, आप उसको

न केवल इस लोक में निहाल करते हैं, वरन् परलोक में भी सुखी करके प्रसन्न करते हैं। आप अपने भक्त को ब्रह्मचर्य में स्थिर करके उसको ज्ञान, विज्ञान आदि धन से पूर्ण करके, परलोक की सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ ॥

प्रभो। आप ऐसी कृपा करें कि आप हमको हृदय से कभी न बिसरें जिससे कि हम निष्पाप होकर सदा आनन्दित रहें।

भगवन् ! जो आपको आत्म-समर्पण करते हैं, वे सदा ही निष्पाप होकर आपके प्रदान किये हुए पूर्ण परमानन्द को चिरकाल तक भोगते हैं ॥४॥

पिता आपकी कृपा से हमारी वाणी सब को पवित्र करने वाली और वेदोक्त

कर्मों के प्रगट करने वाली हो, इसके लिये हम वेदोक्त कर्म करते हुए आपकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते रहें। उत्तम कर्मों में रुचि दिलाने वाले और उनका फल देने वाले केवलमात्र आप ही हो ॥५॥

हे सर्व-पालक, सर्वपोषक! जड़ और चेतन जगत् के रचने वाले पिता! जिस प्रकार आप अपने उत्तम ज्ञान से हमारी बुद्धि को निर्मल बनाते हैं, उसी प्रकार हमारे शरीर की रक्षा कीजिये और इसको सदा रोगरहित रखिये जिससे आपका उत्तम ज्ञान हमारे मन, वाणी और शरीर द्वारा प्रकट होता रहे। आप निष्काम हो, हमें भी निष्काम बनाइए! हम वैदिक

कर्मों को इकट्ठे मिलकर प्रीतिपूर्वक निष्काम होकर करते रहें। हममें वेदपाठी और तेजस्वी ब्राह्मण हों, जो हिंसक दुष्ट स्वभाव वाले असुरों से हमारी रक्षा करते रहें जिससे हम सब प्रकार से निर्भय होकर आपकी सेवा में तत्पर हों। प्यारे पिता! आपकी कृपा से हम सब सुखी रहें, सब भद्र देखें। कल्याणकारी पदार्थ देखें। हममें से एक भी दुःख का भागी न बने!

२—प्रार्थना

ओं तदेजति तन्नैजति,
तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य,
तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥१॥

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः,
स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो,
ह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥
इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति,
न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः,
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥३॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छ-
छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्त कर्माणि,
तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥४॥
प्रियं मा कृणु देवेषु,

प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत् ,
उत शूद्रे उतार्ये ॥४॥

भगवन् ! आप अत्यन्त कल्याणयुक्त गुणों से परिपूर्ण हो, आप इस सारे जगत् के चक्र को चला रहे हो, और स्वयम् एकरस सर्वत्र परिपूर्ण हो, दूर से दूर और निकट से निकट हो। आप की शरण त्यागकर जीव सारे जगत् में भटकते हैं, कहीं विश्राम नहीं मिलता। जो आपको भूले हुए हैं उन से आप अत्यन्त दूर हैं, पर जो आप की शरण में आन पड़े हैं, उनके सदा निकट, हृदय के भीतर ही विराजमान हो, वे अपने हृदय के द्वार खोलकर

आत्मा द्वारा आपके दर्शन करते हैं। आप सबके भीतर तथा बाहर हो और सब से न्यारे हो।

ओं सह नाववतु,
सह नौ भुनक्तु,
सह वीर्य्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु,
माविद्विषावहै ॥

एक चींटी से लेकर बड़े हाथी तक सब तारागण, ग्रह, उपग्रह, चन्द्र, सूर्य, धूम्रकेतु जो आकाश में चक्कर खा रहे हैं; सब जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, मनुष्य तथा नाना प्रकार के फल-फूल और वनस्पति आप के ही उत्पन्न किये हुए हैं। जल और पवन के स्थल सब आपकी महती

महिमा के ही शब्द गा रहे हैं।

स्वामिन्! आपके बिना हमारा और कौन है? विपत् काल में आप ही आश्रय हो, आप ही शान्तिदाता हो। नमस्कार हो, उस अन्तर्यामी अनाथों के नाथ को, जो क्लेशों को दूर करता है और अपनी परम शक्ति से भोजन देता है! वन्दना और प्रणाम हो उस नित्य शुद्धिदाता को, जिसकी दया से परम आनन्द प्राप्त होता है! वन्दना हो रोगविनाशक स्वामी, और सर्वान्तर्यामी महान् पिता को, जिसका राज्य अटल है, जिसकी शक्ति अटल है, जिसका सामर्थ्य अटल है।

त्रिलोकी के नाथ! हम आपके पाँव पड़ कर वरदान मांगते हैं कि आप

कृपा करके हमें शुद्ध मति दीजिये, सुबुद्धि अर्पण कीजिये और मानसिक दृढ़ता दीजिये। जो दुःख, जो कष्ट हम को पहुंचे उनसे व्याकुल होकर शुद्ध और पवित्र मार्ग को न भूल जाएँ। चाहे जगत् हमारी दुर्दशा भी करे, चाहे हमारा नाम भी घटे, परन्तु हमारी सदा यही अभिलाषा रहे कि हम आपकी आज्ञा को पाल सन्मार्ग के यात्री हों, सत्य ही बरतें, तब ही हम आपकी कृपा सम्पादन करने के योग्य होंगे। हे रोग-विनाशक स्वामिन्! सदैव हमारी श्रद्धा आपकी भक्ति में रहे, हमारी विद्या बढ़े, हमारा पढ़ा पढ़ाया सफल हो!

ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

३—प्रार्थना

ओं सहस्रशीर्षा पुरुष:,
सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वतस्पृत्वा-
ऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१॥
यतो वाचो निवर्तन्ते,
अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्,
न बिभेति कदाचन ॥२॥

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये,
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं,

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥३॥
यतो यतः समीहसे,
ततो नोऽभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्यो-
ऽभयं नः पशुभ्यः ॥४॥
सख्ये ते इंद्र वाजिनो,
मा भेम शवसस्पते
त्वामभिप्रणोनुमो,
जेतारमपराजितम् ॥५॥

भगवन् ! आप निर्भय और निर्दोष हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। आप सत्य-स्वरूप और सदा एक-रस रहने वाले हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, बिजली, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि सभी आप

की महिमा का गान कर रहे हैं, सब ही आपका सन्देश सुना रहे हैं, सब ही हाथ जोड़ आपकी स्तुति कर रहे हैं। यह जीव-जन्तु, पक्षी, कीट-पतङ्ग सभी आप की दया के प्रशंसक हैं। सभी आपकी पूजा में मग्न हैं। सभी आपके द्वार के भिक्षुक हैं। अनेक प्रकार के फल-फूल, कन्द-मूल, अन्न, औषधियां सब ही मुक्त-कण्ठ से आपके हित और दया को प्रकट कर रहे हैं।

भगवन्! आप ही सबके इष्टदेव हो, आप ही पूजा के योग्य हो। पृथ्वी से लेकर सूर्यपर्यन्त सब अद्भुत् रचना आप ही के गुप्त हाथों से रची गई है।

भगवन्! जैसे आप महान् तथा

विचित्र हैं वैसे ही आपके काम महान् तथा विचित्र हैं। हे देवों के देव महादेव! आप धर्म, न्याय और प्रेम के केन्द्र हैं, यह रचना भी धर्म, न्याय और प्रेम को प्रकटा रही है। आपका ज्ञान पूर्ण और सदा एक-रस रहने वाला है। आपकी बुद्धि, आपकी दया और आपके कार्य्य महान् हैं। कौन आप तक पहुंच सकता है? कौन आपका पारावार पा सकता है?

महाराज! आपका मन्यु हमारी मृत्यु और आपकी प्रसन्नता हमारा जीवन है। हम भूलकर भी मन, वाणी और कर्म से आपको अप्रसन्न न करें, सरलता, इन्द्रिय-दमन, विजय और समर्पण यह हमें बहुत बड़ी मात्रा में प्रदान

कीजिये, जिससे कि हम आपको सदा प्रसन्न करते रहें।

भगवन्! आप सदा हमारी रक्षा करते रहें। हमें सब प्रकार से सुख से भरपूर करते रहें। हम आपको भूल जाते हैं, परन्तु आप हमारा कभी त्याग नहीं करते।

महाराज! हम पर कृपा करो, हम आत्मा के शब्द को ध्यान से सुनें। यह जीवन सदा ही निष्पाप रहे। आपकी सौम्यमूर्ति का ही प्रकाश होता रहे। हम आपके उपकार का सदा धन्यवाद करते रहें!

महाराज! आपके सेवक यह मांगते हैं कि आज से मन, वाणी, शरीर और आत्मा सब ही आपकी पूजा में लगे रहें। हमारा समय, हमारी स्मरण-

शक्ति, हमारे कर्म सभी उज्ज्वल और स्वच्छ हों। यह सब मिलकर आत्मा का कल्याण करने वाले हों।

महाराज! आज से हम अपने अधिकार हटा कर इनको आपके ही चरणों में समर्पण करते हैं। आपही इससे यथायोग्य काम लें। आप ही हमारे परम गुरु, परम सहायक और परम रक्षक हैं। आपके द्वार को छोड़कर अब कहां जायें! आप ही हमारे रक्षक हैं। आपकी रक्षा में आये हुये को दुःख और भय कहां हो सकता है? आपके चरणों में समर्पण किये हुये मन, वाणी और शरीरादि की विभूति को कौन चुरा सकता है? आपका क्रोध वहाँ ही होता है जहां आपका अधिकार

नहीं माना जाता, बस आज से हम अपने आप को आपके पवित्र चरणों में समर्पण करके नियम-पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप हमें स्वीकार करें।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

४—प्रार्थना

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः
यः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थिति बन्धहेतुः ॥१॥
बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥२॥

सर्वतः पाणिपादं तत्,
सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके,
सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३॥
यो भूतश्च भव्यश्च,
सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्य्यस्य च केवलं,
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥४॥

हे सर्वाधार परमात्मन्! जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान् में है, उस सब के अधिष्ठाता आप हो। वायु आपकी आज्ञा में चलती है और अग्नि आप के नियम में जलती है। आपके शासन में सूर्य और चन्द्रमा चमकते हैं, मेघ

बरसता है। आप उन सबके जीवन-दाता हो, जो आंख खोलता है और सांस लेता है। आप सब के प्राणाधार और प्राणपति हो। आप इस सारे जगत् से परे केवल सुखस्वरूप हो, हमारा प्रणाम् आप को हो। आप सबसे श्रेष्ठ हो, आपको प्रणाम् हो।

हे हृदय के स्वामिन्! आप राजाओं के अधिराज हो, आपके पास खाली हाथ किस भांति आवें, क्या लेकर आवें? सब कुछ तो आपका दिया है, हमारा प्राण, हमारी इन्द्रियां, सब आपकी दी हुई हैं। आत्मा के भी आप ही स्वामी हो, अतः कृतज्ञ बन कर आपके निकट आते हैं। आपकी भेंट के लिए

जो हमारे पास है, वह आप से पाया है, आपकी भेंट करते हैं। स्वीकार करो और मुझे अपना अनुगत बना लो। हमारा सर्वस्व आप के कार्य में लगे! हमारा सारा परिवार आप की इच्छा के अधीन हो! आप के सहवास में सच्चे सुख को भोगें। हमारे छोटे बड़े, तरुण और शिशु, पिता और भ्राता सब आनन्द में रहें। हमारे शरीरों को कभी क्लेश न हो। आपकी इच्छा में हमारा हृदय एक हो। हम एक दूसरे को प्यार करें। पुत्र पिता का अनुरागी हो, माता का सेवक बने। पत्नी पति के प्रति मीठा और शान्तियुक्त व्यव-हार करे। हम सब एक होकर आप

के नाम की महिमा गाएं। विद्वानों में द्वेष मिट जावे। सब एक परिवार बन कर रहें। वेद का उपदेश हमारे घर में हो। हम उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ते हुए शान्तचित्त हो कर आप की आराधना करें। हम एक हों, वैर-विरोध से बचे रहें। हमारी वाणी में मिठास हो, दृष्टि में प्यार और हृदय में विश्वास हो। हमारा अन्न और जल एक हो। हम सब स्नेह-पाश में बन्धे हुए आप ही को पूजा का केन्द्र बनावें। सायं प्रातः आप के चरणों का आश्रय लें। हमारा सर्वस्व आपके अर्पण हो। हमारा सारा परिवार आपका बनकर रहे। आपकी इच्छा से मृत्यु से पार होकर, अमृत को प्राप्त करें। आपकी

ही शरण पकड़ कर हम कहें—"आप हमारे हो और हम आपके हैं !"

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

प्रभु भक्ति के भजन

१. भजन

ईश्वर का जप जाप रे मन,
वृथा काहे को जन्म गँवावे ॥१॥
दीनानाथ दयालु स्वामी,
प्रकट सब जा आप रे ॥२॥
सर्व-व्यापक की पूजा कर ले,
दूर होवें दुःख ताप रे ॥३॥
कर संध्या और पढ़ गायत्री,
मिट जावे सन्ताप रे ॥४॥
छोड़ असत् को सत् ग्रहण कर,
नष्ट होवें सब पाप रे ॥५॥

खुश होकर प्रभु विनती सुन लें,
'बेकस' करे विलाप रे ॥६॥

— —

२ भजन

शरण प्रभु की आवो रे,
यही समय है प्यारे ॥१॥
छल कपट और झूठ को त्यागो,
सत्य में चित्त लगाओ रे ॥२॥
उदय हुआ ओम् नाम का भानु,
आओ दर्शन पाओ रे ॥३॥
पान करो इस अमृत फल को,
उत्तम पदवी पाओ रे ॥४॥
हरि की भक्ति बिन नहीं मुक्ति,
दृढ़ विश्वास जमाओ रे ॥५॥
मानुष जन्म अमोलक है यह,
वृथा न इसे गँवाओ रे ॥६॥

कर लो नाम हरि का सिमरन,
अन्त को न पछताओ रे ॥७॥
धन्य दया जो सब को पाले,
मत उसको बिसराओ रे ॥८॥
छोटे-बड़े सब मिलकर खुशी से,
गुण ईश्वर के गाओ रे ॥९॥

३—आरती

जय जगदीश हरे पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करे।
जो ध्यावे फल पावे दुख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे कष्ट मिटे तन का।
मात-पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आश करूँ किसकी।
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।

पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी।
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता।
दीनदयालु कृपालु, कृपा करो भर्ता।
तुम हो एक अगोचर, सब के प्राणपति।
शुद्ध करो मम हृदय, धर्म में होवे गति।
दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, द्वार पड़ा तेरे।
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा।

ईश्वरोपासना

'उप' समीप 'आसना' बैठना—जब जीवात्मा परमात्मा का साक्षात् दर्शन करने के लिये उसके समीप बैठता है। उपासना की विधि यह है कि एकान्त स्थान में बैठ कर अपने मन को शुद्ध

करके परमात्मा में स्थिर करें, और बारम्बार वेदमन्त्रों का अर्थ-सहित मन में पाठ करके भगवान् की महिमा का गान करें। ऐसा अनुभव करें कि मानो परमात्मा के सद्गुण हृदय में आ रहे हैं। उपासना के कुछ मन्त्र अर्थ-सहित नीचे दिये जाते हैं।

अष्टाविंशानि शिवानि
शग्मानि सहयोगं भजन्तु मे
योगं प्रपद्ये क्षेमं च, क्षेमं प्रपद्ये
योगं च नमोऽहोरात्राभ्या-
मस्तु ॥१॥

हे परमैश्वर्ययुक्त मंगलमय परमेश्वर! आपकी कृपा से मुझको उपासना योग प्राप्त हो, जिससे मुझको सुख मिले। आपकी कृपा से दश इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि

चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल अहर्निश उपासना सदा करें। हम लोग आपको नमस्कार करते हैं ॥१॥

भूयानरात्याः शच्याः,
पतिस्त्वमिन्द्रासि ।
विभूः प्रभूरिति,
त्वोपास्महे वयम् ॥२॥

हे जगदीश्वर ! आप मन, वाणी और कर्म इन तीनों के पति हैं, सर्वशक्तिमान् आदि विशेषणों से युक्त हैं। आप दुष्ट प्रजा, मिथ्या वाणी और पाप कर्मों को नष्ट करने में अत्यन्त समर्थ हैं। आप को सर्वव्यापक और सर्व सामर्थ्य वाले जान कर हम लोग आपकी उपासना करते हैं ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यते।
अन्नाद्येन यशसातेजसा ब्रह्मवर्चसेन ।

अन्न आदि ऐश्वर्य, उत्तम कीर्ति, भय से रहित, विद्या से युक्त हम लोगों को करें, हम सदा आपकी उपासना करते रहें।

अम्भो अमो महः सह,
इति त्वोपास्महे वयम् ।।४।।

हे भगवन्! आप सर्वव्यापक, शांति-स्वरूप, प्राण के भी प्राण हैं। सब के पूज्य, सब से बड़े और सहनशील हैं। हम आपकी उपासना करते हैं।।४।।

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह
इति त्वोपास्महे वयम् ।।५।।

आप प्रकाशस्वरूप, दुःखनाशक,

आनन्दस्वरूप, ऐश्वर्य से युक्त और सहनशील हैं। हम आपकी उपासना करते हैं ॥५॥

उरुः पृथुः सुभूर्भुवः
इति त्वोपास्महे वयम् ॥६॥

आप बल वाले आदि-अन्त-रहित, सब पदार्थों में वर्तमान और अवकाश-स्वरूप से सब के आप निवास-स्थान हैं। हम उपासना करके आपके ही आश्रित रहते हैं ॥६॥

प्रथो वरो व्यचो लोक,
इति त्वोपास्महे वयम् ॥७॥

परमात्मन्! आप जगत् में प्रसिद्ध और उत्तम हैं। इसका धारण, पालन और लय करने वाले तथा जानने के योग्य केवल आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं ॥७॥

भजन न० ४

तेरा नाम ओंकार, कोउ न पा सके है पार।
महा-मुनीश गये हार, गाय गाय ध्याय ध्याय।
सत्चित् आनंदस्वरूप, बिना रंग रहित रूप।
तू अनूप जगत् भूप, निराकार निर्विकार॥
अजर अमर नित्य-अभय, ब्रह्म अखंड अक्षय।
शुद्ध, बुद्ध मंगलमय, तू अपार तू अपार॥
तू अभेद तू अछेद सर्वशास्त्र कहत वेद।
'नवलसिंह' कहे पुकार, कोऊन कह सके विस्तार॥

धर्म के लक्षण

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः

अर्थात् जो मनुष्य धर्म का नाश करता है, धर्म उसका नाश करता है और जो धर्म की रक्षा करता है धर्म भी उसकी

रक्षा करता है। धर्म ही मनुष्य का सच्चा संगी है।

धर्म क्या है? आर्य-स्मृतिकार मनु महाराज ने धर्म का निम्न प्रकार से लक्षण किया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं
शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो
दशकं धर्म-लक्षणम्।

धर्म के दस लक्षण हैं—धृति (धैर्य) क्षमा (अपराधी के प्रति उदारता) दम (शरीर, इन्द्रियों और मन पर संयम) अस्तेय (चोरी न करना) शौच (पवित्रता) इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना) धी (बुद्धि) विद्या (ज्ञान) सत्य (सचाई)

अक्रोध (गुस्से में न आना) ।

धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिये मनुष्य को धर्म के इन दसों लक्षणों पर आचरण करना चाहिये ।

स्वाध्याय की महिमा

स्वाध्यायाद्‌योगमासीत
योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्या
परमात्मा प्रकाशते ॥१॥

स्वाध्याय से मनुष्य योग को धारण करे । योग से स्वाध्याय का मनन करे । दोनों को पालन करने से परमात्मा अन्तःकरण में प्रकाशित होते हैं ॥१॥

यथा यथा हि पुरुषः,

शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति
विज्ञानं चास्य रोचते ॥२॥

ज्यों-ज्यों पुरुष शास्त्र को पढ़ता है
त्यों-त्यों उसका ज्ञान बढ़ता जाता है,
और विज्ञान रुचिकर होता है ॥२॥

योग-शास्त्र की टीका में महर्षि व्यास लिखते हैं कि मोक्ष-शास्त्र वा आत्मशास्त्र का पाठ करना 'स्वाध्याय' कहाता है ।

वेदों के मन्त्र जिन में आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विषय हैं, उपनिषदें, योगदर्शन, वेदान्त-दर्शन, गीता, ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका के प्रार्थना, स्तुति और उपासना के विषय, सत्यार्थप्रकाश का नवम समुल्लास—इनके विशेष रूप

से स्वाध्याय से मनुष्य ज्ञान-मार्ग की ओर बढ़ता है। यथार्थ ज्ञान ही मुक्ति का सच्चा द्वार है। स्वाध्याय के करने से सब इष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। ईश्वर की असंख्य शक्तियां स्वाध्यायशील मनुष्य की पूरी सहायता करती हैं। इससे ऋषि-ऋण दूर होता है। स्वाध्याय से हम प्रतिदिन प्रातःकाल ऋषि-मुनियों से मिलाप कर सकते हैं। ऋषि दयानन्द अपने अन्त के दिनों तक स्वाध्याय करते रहे थे।

स्वाध्याय नित्य प्रातःकाल जिस प्रकार भी हो सके थोड़ा बहुत समय निकाल कर करना चाहिए। स्वाध्याय बुद्धि को तीव्र और आत्मा को उज्ज्वल बनाता है।

स्वाध्याय के लिए कुछ मन्त्र

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१॥

जो प्रजापति अर्थात् सब जगत् का स्वामी है, वही जड़ और चेतन के भीतर और बाहर अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। जो सब जगत को उत्पन्न करके अपने आप सदा अजन्मा रहता है, उस परब्रह्म की प्राप्ति का कारण सत्य का आचरण और सत्य विद्या है, उसको विद्वान् लोग प्राप्त करके परमेश्वर को प्राप्त होते हैं।

उसी परमेश्वर में जिसमें सभी लोग ठहर रहे हैं, ज्ञानी लोग भी, सत्य निश्चय से मोक्ष-सुख को प्राप्त होकर जन्म मरण आदि से छूट कर आनन्द में सदा रहते हैं।

यो देवेभ्य आतपति,
यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो,
नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२॥

जो परमात्मा विद्वानों के लिए सदा प्रकाशस्वरूप है अर्थात् उनके आत्माओं को जो प्रकाशमय कर देता है, वह उनका पुरोहित अर्थात् अत्यन्त सुखों का धारण और पोषन करने वाला है, उन सब से आदि, आनन्दस्वरूप और

सत्य में रुचि कराने वाले ब्रह्म को नमस्कार हो ॥२॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो,
देवा अग्रेतदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्,
तस्य देवा असन् वशे ॥३॥

जो ब्रह्म का ज्ञान है, वही आनन्द देने वाला, और मनुष्य की उसमें रुचि बढ़ाने वाला है. जिस ज्ञान से विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों के आगे उपदेश करके उनको आनन्दित कर देते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार से ब्रह्म को जानता है, उस विद्वान् के सब मन आदि इन्द्रिय वश में हो जाते हैं, अन्य के नहीं ॥३॥

यत्परममवमं यच्च मध्यमम् ।
प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्
कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र,
यन्न प्राविशेत कियत्तद्बभूव ॥४॥

जो उत्तम, मध्यम और नीच स्वभाव से तीन प्रकार का जगत् है, उस सबको परमेश्वर ने ही रचा है। उसने इस जगत् में नाना प्रकार की रचना की है और वही इस सब रचना को यथावत् जानता है, इस जगत में जो विद्वान् होते हैं वे भी कुछ-कुछ परमेश्वर की रचना के गुणों को जानते हैं। वह परमेश्वर सब को रचता है, आप रचना में कभी नहीं आता ॥४॥

॥ सुभाषित-रत्नावली ॥

१. सत्यं वद ॥ सत्य बोल ॥१॥

२ धर्मं चर ॥ धर्म पर चल ॥२॥

३. मा गृधः ॥ लालच मत करो ॥३॥

४ ओं क्रतो स्मर ॥
हे जीव ! ओ३म् का जाप कर ॥४॥

५. क्लिवे स्मर । शक्ति के लिये जाप कर ॥५॥

६. कृतं स्मर । किये कर्म को याद कर ॥६॥

७. मनः सत्येन शुध्यति ॥
मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है ॥७॥

८. वर्जयेत् मधु मांसं च ॥
मांस और मद्य को छोड़ दो ॥८॥

९. अश्मा भव। पत्थर की न्याई दृढ़ हो ॥९॥

१०. परशुर्भव। कुल्हाड़े के समान हो ॥१०॥

११. अश्मानं तन्वं कृधि ॥
शरीर को व्यायाम से पत्थर बनालो ॥११॥

१२. घृतेन तन्वं वर्धयस्व ॥

घी से शरीर को बढ़ाओ ॥१२॥

१३. विद्या धर्मेण शोभते ॥

विद्या धर्म से शोभा देती है ॥१३॥

१४. विद्याविहीनः पशुभिः समानः ॥

विद्या के बिना मनुष्य पशु समान है।१४।

१५. क्षमा वीरस्य भूषणम् ॥

क्षमा वीर पुरुष का भूषण है ॥१५॥

१६. पुरा जरसो मा मृथा ॥

बुढ़ापे से पहले मत मर ॥१६॥

१७. यतेमहि स्वराज्ये ॥

स्वराज्य-प्राप्ति में हम यत्न करें ॥१७॥

१८. सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।

सत्य ही सदा बोलूंगा, झूठ नहीं ॥१८॥

१९. यतो धर्मस्ततो जयः ॥

जहाँ धर्म है वहीं विजय होती है ॥१९॥

२०. न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥

ईश्वर का मित्र कभी कष्ट नहीं पाता ।२०।

२१. वयं जयेम त्वया युजा ॥

हम आप के साथ मिले हुए जीतें ॥२१॥

२२. तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार हो ॥२२॥

२३. ईशावास्यमिदं सर्वम् ॥

ईश्वर सब जगह व्यापक है ॥२३॥

२४. पशून् पाहि ॥ पशुओं की रक्षा कर ॥२४॥

२५. गां मा हिंसीः ॥ गौ को मत मार ॥२५॥

२६. अविं मा हिंसीः ॥

भेड़ वा बकरी को मत मार ॥२६॥

२७. इमं मा हिन्सीर्द्विपाद-पशुम् ॥

दो खुर वाले पशु को मत मार ॥२७॥

२८ मांसं नाश्नीयात् ॥ कोई मांस न खावे २८

२९. अश्वं मा हिंसीः ॥ घोड़े को मत मार ।२९।

३०. कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥
सारे संसार को आर्य बना ॥३०॥

३१ अस्तु मयि श्रुतम् ॥ मैं वेदपाठी बनूँ ॥

३२. संश्रुतेनगमेमहि ॥ हम वेदानुसार चलें ॥

३३. मा श्रुतेन विराधिषि ॥
वेद का विरोध मत कर ॥३३॥

३४ सपत्ना अस्मदधरे भवन्तु ॥
शत्रु हमारे अधीन होवें ॥३४॥

३५. अहं भूयासमुत्तमः ॥
मैं सबसे उत्तम बनूँ ॥३५॥

३६. वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
हम धन के स्वामी बनें ॥३६॥

३७. अभयं पशुभ्यः ॥ पशुओं से अभय हो ॥

३८. सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥
दिशाएं और आशाएं मेरी मित्र हों ॥३८॥

३९. अक्षैर्मा दीव्यः ॥ जुआ मत खेल ॥३९॥

४०. कृषि कृषस्व ॥ खेती-बाड़ी कर ॥४०॥

४१. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥
जिस काम से इस लोक तथा परलोक का सुधार हो वह धर्म है ॥४१॥

४२ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥
ब्रह्मचर्य और तप से विद्वानों ने मृत्यु को जीता ॥४२॥

४३. नाऽनाश्रान्ताय श्रीरस्ति ॥
बिना कष्ट धन नहीं मिलता ॥४३॥

४४. इन्द्र इच्चरतः सखा ॥
परिश्रमी की प्रभु सहायता करता है ॥४४॥

४५. नो राजा कृषिं तनोतु ॥
हमारा राजा खेती को बढ़ावे ॥४५॥

४६. सहसा विदधीत न क्रियाम् ॥
जल्दी में काम मत करो ॥४६॥

४७ ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥
ब्रह्मचर्य से वीर्य प्राप्त होता है ॥४७॥

४८. वयं भगवन्तः स्याम ॥
हम धनवान् बनें ॥४८॥

४९. अन्नं न निन्द्यात् ॥
अन्न की निन्दा न करो ॥४९॥

५०. चरैवैत चरैवेति ॥ यत्न करो, यत्न करो ॥

५१. सतां सङ्गो हि भेषजम् ॥
सज्जनों का सङ्ग ही औषधि है ॥५१॥

स्वास्थ्य के नियम

१. सदा शीतल जल से स्नान करो।
२ केवल रोग में कोसे जल से नहाओ।
३. खाने के तत्काल पहले व पीछे जल मत पीओ, भोजन में थोड़ा जल पीओ। यदि भोजन के एक घंटा पीछे जल पीवें, तो अधिक लाभ होता है।

४. ग्रीष्म काल में बर्फ़ तथा सोडा मत पीओ, इनसे प्यास तथा शुष्कता बढ़ती है तथा पाचनशक्ति घट जाती है।

५. विशूचिका (हैजे) में कुएं का जल उबाल कर पीओ।

६ प्रतिश्याय (जुकाम) खाँसी तथा शीत ऋतु में सदा उष्ण जल सेवन करो।

७. स्वभाव से चाय मत पीओ। यह भूख, प्यास और नींद कम करती है, अएड कोषों को निर्बल बनाती तथा मूत्र अधिक लाती है।

वायु

१. खुली वायु में नित्य व्यायाम करो।

२. खुले मैदान और उपवन (बाग़) में जाकर गहरे श्वास लो।

३. तङ्ग गली-कूचों में रहना छोड़ दो।

४. सोते समय झरोखों (रोशनदानों) को खुला रखो।
५. बहुत सर्दी में सिर ढांप लो, परन्तु मुँह खुला रखो।
६. रोगी के कमरे में बहुत मत रहो।
७. सदा नाक से श्वास लिया करो।

भोजन

१. भोजन शनैः २ चबा २ कर खाओ।
२. स्वादु भोजन अधिक मत खाओ।
३. अजीर्ण में कुछ मत खाओ। कभी-कभी उपवास लाभदायक होगा।
४. क़ब्ज़ में मोटे आटे की रोटी तथा साग वा फल खाओ।
५. भोजनशाला स्वच्छ, सुन्दर और खुली होनी चाहिए।
६. उष्ण पदार्थ खाकर तत्काल ठंडी वस्तु

मत खाओ।

७. खटाई और दूध एक साथ मत खाओ।

८. मूली, दही, पनीर इकट्ठे मत खाओ।

९. भोजन से पूर्व तथा पीछे हाथ, जिह्वा, दांत, गला, जल से स्वच्छ करो।

१०. भोजन के तत्काल पीछे व्यायाम, स्त्रीभोग, स्नान, चिन्ता तथा क्रोध करना अत्यन्त हानिकारक है।

११. दो काल ही भोजन करो।

१२. बार-बार खाना आमाशय को निर्बल करता है. एक बार दूध पीना चाहिए।

१३. अन्न की निन्दा मत करो।

१४. पाँव धोकर भोजन खाओ।

१५. मांस मत खाओ।

निद्रा

१. सोने से तीन घंटे पूर्व भोजन करो।

२. रात को जल, दूध, मिठाई न खाओ।

३. पीठ के बल न सोवो, अपितु पहलू के बल सोया करो, विशेषकर जबकि 'स्वप्नदोष' का रोग हो।

४. सोने से पन्द्रह मिनट पहले दिमागी काम, चिन्ता, क्रोध, निराशा तथा रोग की वार्ता आदि छोड़ दो।

५. सोने से पहले थोड़े से गहरे श्वास खुले स्थान तथा वायु में लेकर प्राणायाम करो तथा कहो कि—

'मैं आज से बहुत गहरी नींद सोऊँगा, सोना मेरा स्वाभाविक अधिकार है।'

६. साधारण प्राणायाम तथा तेल की अभ्यंग (मालिश) अच्छी नींद लाती है।

७. सोने से पहले शौच, मूत्रादि अवश्य कर लेना चाहिये।

८. किसी से लड़ाई झगड़ा न करो।

६. मैले वस्त्र न पहनो।

१०. रात्रि और दिन के वस्त्र पृथक् रखो।

११. सायं प्रातः सोते रहना आयु को घटाता है।

१२. ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो।

१३. ज्ञानियों तथा वृद्धों की सेवा करो।

१४. सर्दियों में सूर्य-सेवन करो।

१५. मन, वचन, कर्म से सत्य स्वभाव वाले बनो।

१६. मलमूत्र के वेग को मत रोको।

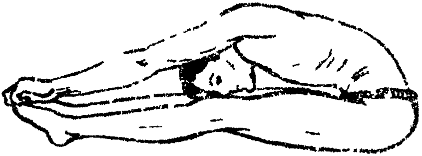
१७. सदा सन्तोषी रहो।

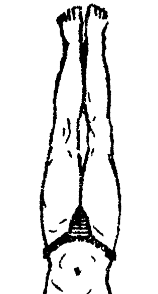
योग के आसन

'योग के आसनों' से प्राय: प्रत्येक शारीरिक रोग दूर हो सकता है। विदेशी सब प्रकार के व्यायामों से इनका व्यायाम उत्तम है। शरीर सुन्दर, सुडौल, सुगठित और तेजस्वी हो जाता है।

पद्मासन— पांव की नस नाड़ियों की शुद्धि, ध्यान में सुगमता, पाचन-शक्ति की वृद्धि और पेट के सब दोष दूर हो जाते हैं।

(२) पादहस्तासन--जठराग्नि की वृद्धि शौच, शुद्धि, अजीर्णनाश, कृमि-विकार, तिल्ली-विकार तथा मेदा घट जाता है।





(३) शीर्षासन—

रक्त-शुद्धि, हाथ-पांव के सुन्न का दूर होना, सिर, मुख और छाती का रक्त अधिक लाल एवं तेजस्वी, पेट के सब रोग दूर, बुद्धि तथा स्मरण-शक्ति की वृद्धि, वीर्य की ऊर्ध्व-गति, स्वप्नदोष का नाश, पाचनशक्ति की वृद्धि, सिर के श्वेत बाल काले, वृद्धावस्था दूर, नेत्र

विकार का नाश, मुख की अरुचि, कण्ठ-दोष, गले पड़ने, छाती की निर्बलता, यकृत् और प्लीहा आदि सब रोग इससे दूर हो जाते हैं।

(४) पश्चिमोत्तानासन—

यह एक प्रकार से पादहस्तासन ही है। वही लाभ इससे होते हैं।

❀ महर्षि दयानन्द ❀

महर्षि दयानन्द निस्सन्देह इस युग के जीवन-दाता हैं। भारतवर्ष में इस समय जो कुछ जागृति प्रतीत होती है वह सब उन्हीं का पुण्य-प्रताप है। लोग पक्षपात के कारण इस बात को मानें या न मानें परन्तु सत्य तो यह है कि उनके प्रचार से सब कपोल-कल्पित

मत-मतान्तर अपनी नींव से हिल चुके हैं और प्रत्येक पन्थ यत्न कर रहा है कि वह अपने माने हुये सिद्धान्तों को ऋषि की बतलाई हुई सच्चाई के अनुकूल सिद्ध करे। ऐसी अवस्था में वह समय दूर नहीं, जबकि सारे भारतवर्ष के नर-नारी मुक्तकण्ठ से ऋषि को अपना जीवनदाता स्वीकार करके उनके लिये श्रद्धा और भक्ति प्रकट करेंगे।

ईसाई और यवन आदि कुछ काल के लिये उनको अपना जीवनदाता स्वीकार करने में संकोच करें तो करें, परन्तु किसी आर्य (हिन्दू) बच्चे को तो क्षण भर के लिये भी संकोच नहीं होना चाहिये क्योंकि ऋषि ने वास्तव में मृत्यु के निकट पहुँची हुई आर्य जाति को नवजीवन प्रदान किया है। ऋषि से

पूर्व किसी हिन्दू में यह साहस न था कि वह अपने धर्म, अपने वेदशास्त्र और अपने महापुरुषों के लिए अभिमान कर सके क्योंकि वैदिक धर्म के शत्रुओं ने उन सब को दूषित और कलङ्कित कर रखा था, इसी कारण सहस्रों आर्य बालक दिन-प्रति-दिन ईसाइयों और यवनों के ग्रास हो रहे थे। परन्तु जीवनदाता ऋषि दयानन्द ने अपने तपोबल से हीन और दीन आर्य्य जाति को नवजीवन प्रदान किया। स्वामी जी ने आर्य्य जाति के सिंह-पुत्रों को जो अविद्या से भेड़ों में मिले हुए थे, इस सत्य का बोध कराया कि वे सिंह हैं। हिन्दू अपने वेद-शास्त्र के नाम तक भूल गये थे, स्वामी जी ने उनका पुनः प्रचार करके आर्यों को इस योग्य

बनाया कि वे अपने धर्म, वेद-शास्त्रों और अपने ऋषि-मुनियों के लिये अभिमान कर सकें। उनके ही प्रयत्न का फल है कि आज कोई हिन्दू धर्म के कारण पतित नहीं होता।

ऋषि के जीवन और काम को विस्तार-पूर्वक जानने के लिये प्रत्येक आर्य को उनका सम्पूर्ण जीवन-चरित्र पढ़ना चाहिये। परन्तु यहां उनके सम्बन्ध में दो-चार आवश्यक बातें ही दी जा रही हैं।

जीवन-परिचय

स्वामी दयानन्द का जन्म सन् १८२४ ई० में गुजरात काठियावाड़ प्रान्त के टंकारा ग्राम में पंडित कृष्णजी तिवारी के घर हुआ था। उनका जन्म-नाम मूलशङ्कर था। वे प्रायः मूलजी कहलाया करते थे। तेरह-चौदह वर्ष की आयु में ही

उन्होंने बहुत-सी विद्या प्राप्त करली थी। उनके मन की प्रवृत्ति खोज की ओर अधिक रहती थी। शिव के उपासक होने के कारण शिवरात्रि के दिन पण्डित कृष्ण जी ने अपने पुत्र मूलशंकर से भी शिवरात्रि का व्रत रखवाया, और उसे कहा कि शिवालय में जाग कर शिव को प्रसन्न करना होगा। मूलशंकर ने स्वीकार किया। परन्तु जब आधी रात हो चुकी वह क्या देखता है कि मन्दिर के पुजारी, उनके पिता और अन्य उपासक सब सो गये। इतने में एक चूहा निकला और पत्थर के शिव पर धरी हुई सब मिठाई चट कर गया। इस घटना को देख बालक मूलशंकर चकित रह गया कि क्या यही शिव है, जिसका वर्णन पिता जी इतनी बड़ाई के साथ किया

करते थे ? क्या इसी शिव की उपासना के लिये रात्रि-जागरण और व्रत रखवाया गया है, जो एक चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता है ? पिता से मन का सन्देह दूर करना चाहा परन्तु संतोष-जनक उत्तर न मिला। उसी दिन से सच्चे शिव का पता लगाने का प्रण कर लिया। उसके दो-तीन वर्ष पश्चात् उन की भगिनी और चचा की मृत्यु हो गई। इन दृश्यों को देखकर उन्होंने मृत्यु का पता लगाने का संकल्प कर लिया। यह दो घटनायें थीं, जिन्होंने मूलशंकर के मन पर चोट लगाई, उन्हें घर-बार छोड़ने पर विवश किया और इन्हीं के कारण मूल-शंकर ने दयानन्द बनकर इतनी उच्च पदवी को प्राप्त किया। सच्चे शिव की खोज में मूलशंकर ने सारे वन-पर्वत छान मारे,

परन्तु मन को शान्ति प्राप्त न हुई। दिन-रात इसी चिन्ता में फिरते २ उन्हें पता चला कि मथुरा में एक प्रज्ञाचक्षु (अंधे) दण्डी स्वामी विरजानन्द नामी रहते हैं, वह वेदों के विद्वान् हैं। ३६ वर्ष की आयु में मूलशङ्कर ने जो उस समय तक संन्यास लेकर दयानन्द बन चुका था, मथुरा पहुँच कर स्वामी विरजानन्द का द्वार खटखटाया। दण्डी जी के उपदेशों और वेदशास्त्रों के स्वाध्याय से स्वामी दयानन्द के संशय दूर हो गये। जब दण्डी जी ने देखा कि दयानन्द विद्वान् हो गया है तो एक दिन समावर्तन के लिये नियत किया। दयानन्द के साथ तीन और विद्यार्थी भी पढ़ा करते थे। चारों गुरु जी को दक्षिणा

देने के लिये कुछ भेंट लेने गये। दयानन्द को कुछ लौंग मिले, उसने हाथ जोड़ कर गुरुजी को भेंट किये और कहा—"महाराज! जो कुछ मिला, श्रद्धा-पूर्वक आपकी सेवा में उपस्थित करता हूँ" स्वामी विरजानन्द बोले—"बेटा! मुझे इन लौंगों की आवश्यकता नहीं है। मैं कुछ और चाहता हूँ, यदि दे सकते हो तो दो।" दयानन्द ने हाथ जोड़ कर कहा, "भगवन्! आज्ञा कीजिये।" गुरुजी बोले "संसार में अंधकार फैल रहा है, मत-मतांतरों के पाखंड से मनुष्य पीड़ित हो रहे हैं। बेटा! मैंने जो ज्ञान तुम्हें दिया है उसको फैलाकर तिमिर का नाश करो। मैं तुम से यही दक्षिणा मांगता हूं। क्या तुममें से कोई इस दक्षिणा देने को कटिबद्ध

है।" गुरु जी के यह वचन सुनकर तीन शिष्य तो चुप हो गये, परन्तु दयानन्द कुछ सोच कर बोले—

"भगवन्! तथास्तु, मैं अपना जीवन आप को देता हूं। आपकी आज्ञा का पालन करते हुए आयुभर वेदों का प्रचार करूंगा।" स्वामी विरजानन्द ने आशीर्वाद दिया और दयानन्द उनसे विदा हुये। चार वर्ष तक लश्कर, ग्वालियर आदि स्थानों में प्रचार कर हरिद्वार के कुम्भ मेले पर चले गये, और वहां 'पाखण्ड-खण्डनी पताका' गाड़ कर पौराणिक मतों का भली-भांति खण्डन किया। परिणाम यह हुआ कि पाखण्डी लोग उनके शत्रु बन गये और उन्होंने स्वामी जी को मार डालने

का निश्चय कर लिया। प्रथम बार उन्होंने स्वामी की जगह भूल से किसी और मनुष्य को गंगा में डुबो दिया। दूसरी बार पान में विष दिया। तीसरी बार कर्ण-वास में राव कर्णसिंह ने खड्ग लेकर आक्रमण किया परन्तु स्वामी जी के तेज से उसकी खड्ग गिर पड़ी। जब सब आक्रमण निष्फल गये तो पंडितों ने मिल कर शास्त्रार्थ की ठानी। काशी आदि स्थानों पर शास्त्रार्थ में भी बड़े २ धुरन्धर पण्डित परास्त हुए। अब स्वामी जी की विद्वत्ता और बल का डंका सारे भारतवर्ष में बज गया तो उन्होंने भारत के बड़े २ नगरों में फिर कर प्रचार किया। आर्य-समाज के सम्बन्ध में जितनी भी संस्थाएँ और जितने भी काम दिखाई

देते हैं, वह उस ऋषि के तपोबल का ही परिणाम हैं।

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व स्वामी जी जोधपुर गये और वहाँ के राजा को उपदेश दिया। राजा उनका शिष्य बन गया परन्तु स्वामी जी ने सुना कि राजा ने वेश्या रखी हुई है। एक दिन उसी वेश्या की पालकी राजद्वार में आई। स्वामी जी से रहा न गया और राजद्वार में ही स्पष्ट कह दिया कि सिंह को कुतिया का संग नहीं करना चाहिये। राजा पर तो इसका अच्छा प्रभाव पड़ा, परन्तु वह वेश्या स्वामी जी की वैरिनी बन गई और उसने मन्त्रियों को अपने साथ मिलाकर किसी मनुष्य से उनको

विष दिला दिया। अनर्थ यह हुआ कि जो डाक्टर इनकी चिकित्सा के लिये नियत हुआ वह भी इस पशु-मण्डली से मिला हुआ था, जिससे लाभ के स्थान दिन-प्रति-दिन अवस्था बिगड़ती ही गई।

वहां से स्वामी जी उसी अवस्था में पालकी पर अजमेर लाये गये। अब उनको निश्चय हो गया कि उनका अन्तकाल आ पहुँचा है जिस प्रकार राजा के पास जाने के लिये विशेष तैयारी की जाती है, उसी प्रकार, जिस दिन स्वामी जी ने अपने परम पिता प्रभु की गोद में जाना था उस दिन क्षौर (हजामत) कराई, शरीर को स्वच्छ किया, वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया और अन्त में यह कहकर शरीर को

छोड़ दिया—'ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो।'

स्वामी जी ने ३० अक्तूबर सन् १८८३ ई० में परलोक-गमन किया। इस समय उनकी अवस्था ५६ वर्ष की थी।

ऋषि दयानन्द के उपकार को मत भूलो !
उनके अनुयायी बन जाओ !!

—: स्वामीजी की विशेषतायें :—

(१) स्वामी जी वेदों के बड़े भक्त थे। शङ्कर स्वामी के पश्चात् वेदों का पुनरुद्धार स्वामी जी ने ही किया था।

(२) स्वामीजी बालब्रह्मचारी थे। उन्होंने विद्या, बुद्धि और बल से संसार को ब्रह्मचर्य का महत्व दिखला दिया।

(३) स्वामी जी हठी न थे। एक दिन

उनके मुख से कोई अशुद्ध शब्द निकल गया। एक साधारण-से मनुष्य ने भरी सभा में स्वामी जी को टोक दिया, स्वामी जी ने उसे स्वीकार कर लिया।

(४) स्वामी जी अपनी बात के बड़े पक्के थे। एक दिन किसी हिन्दू ने उनको अपने यहां न ठहराया तो मुसलमान लोग अपने यहाँ ले गये और उपदेश को कहा। स्वामी जी अपने उपदेश में उनका भी खण्डन करने लगे।

—:०:—

"वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है।" —ऋषि दयानन्द

लोग क्या कहते हैं ?

महात्मा गांधी

'महर्षि दयानन्द भारत के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में, श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, उनकी विचार-स्वतन्त्रता, उनका सब के प्रति प्रेम, उनकी कार्यकुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे।

माता कस्तूर बाई

'स्वामी दयानन्द केवल आर्यसमाजियों के लिये ही नहीं, वरम् सारी दुनिया भर के लिये पूज्य हैं।'

पंजाब-केसरी ला० लाजपतराय

केवल 'स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। मैंने संसार में केवल उन्हीं को एकमात्र

अपना गुरु माना है ।'

राजा श्री दुर्गानारायणसिंह बहादुर

'स्वामी दयानन्द नवीन युग के पथ-प्रदर्शकों में से एक हैं । यदि उन्हें इस गणना में सर्वोत्तम स्थान दें तो लेशमात्र भी अतिशयोक्ति न होगी ।'

राजा मोतीचन्द, सी. आई. ई.

'मैं स्वामी जी को हिन्दू जाति का रक्षक मानता हूं, उन्होंने गिरती हुई जाति को बचा लिया, लोगों की आँखें खोल दीं ।'

रेवरेण्ड टी० डी० सले

'जिसे स्वामी दयानन्द जी ने सचाई समझा उसे स्वतन्त्रतापूर्वक स्वीकार किया, जिसे निकृष्ट और मिथ्या समझा उसे निर्भयतापूर्वक सब के सामने रख दिया ।'

कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर भारत को सत्य और पवित्रता की जागृति में लाने वाले गुरुवर दयानन्द को बार-बार प्रणाम है।'

श्री एन० सी० केलकर

'स्वामी दयानन्द जैसे परमोदार पर संकीर्णता का दोष लगाना भ्रमात्मक और अयुक्त है। मैं आर्यसमाज को आदरणीय समझ उसे पूज्य दृष्टि से देखता हूँ।'

ला० हरदयाल एम० ए०

'स्वामी दयानन्द ने हिन्दू युवकों के हृदय में त्याग, परोपकार और देशभक्ति की ज्योति जगा दी। हिन्दू जाति को जो धर्म-शिक्षा इस समय मिली है, उसका

सारा श्रेय स्वामी जी को है।'

श्री माधवराव सप्रे

'इसमें संदेह नहीं कि महर्षि दयानन्द की दिव्य-प्रेरणा से भारतवर्ष में आर्य-समाज ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है।'

डाक्टर पी० सी० राय

'आर्यसमाज ने हमारी मातृभूमि के उद्धार के लिए बहुत कुछ किया है, अतएव यह हमारी चिरकृतज्ञता का पात्र है।'

श्री पीरमुहम्मद यूनिस

'महर्षि दयानन्द ने अपने विद्याबल, कर्मबल और तपोबल से सारी निर्बल-ताओं, अकर्मण्यताओं और बुराइयों को दूर कर दिया। हिन्दुओं को सच्चा और वेदानुयायी बनाया।'

सर एडवर्ड डगलस-मैकलेगन
(भूतपूर्व गवर्नर पंजाब)

'पंजाब में जितने समाज हैं उन सब में आर्यसमाज सर्वोत्कृष्ट है। इसका संगठन बड़ा उत्तम है। यह राजनैतिक संस्था और धार्मिक समाज है।'

मौलाना अब्दुल बारी

'स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म को हमारे सामने इस भांति रक्खा कि हम उस पर बुद्धि से विचार कर सकें।'

पाल रिचर्ड

'स्वामी दयानन्द निस्संदेह ऋषि थे। उन्होंने अपने महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह राष्ट्र को पुनर्जीवित करने वाले थे।'

कर्नल आल्काट

'निस्सन्देह स्वामी जी एक महान् पुरुष, संस्कृत के गम्भीर विद्वान्, उत्कृष्ट साहस और स्वावलम्बन से युक्त मनुष्यों के नेता थे।'

महात्मा एन्ड्रयूज

'स्वामी दयानन्द मृत्यु-पर्यन्त निर्भय रहे और मृत्यु आई तो उन्होंने मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया। वे प्रसन्नता-पूर्वक चोटों को सहते, पर किसी दूसरे को चोट पहुंचाने से घृणा करते थे।'

प्रोफेसर मोक्षमूलर

'स्वामी दयानन्द एक विद्वान् थे जो अनेक देशों के धार्मिक साहित्य से पूर्ण अभिज्ञ थे। उनके धर्म-नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर थी। उनको वेद कंठाग्र

थे, उनके मन व मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था।'

मेडम ब्लवटस्की

'यह सत्य है कि स्वामी शंकराचार्य के अनन्तर भारत में स्वामी दयानन्द से अधिक संस्कृत का विद्वान्, उनसे बढ़कर प्रत्येक बुराई को उखाड़ने वाला, उनसे अधिक कथनशक्ति वाला दार्शनिक उत्पन्न नहीं हुआ।'

लो० बालगङ्गाधर तिलक

'स्वामी दयानन्द विचित्र प्रतिभाशाली पुरुष थे। हिन्दू-समाज में, विशेषकर उत्तरीय भारत में समस्त जागृति का श्रेय उनको है।'

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे

'स्वामी दयानन्द पूर्वजन्म के संस्कारी

आत्मा थे। आर्यधर्म के तत्व को यथार्थ रूप में संसार के सम्मुख रखने में स्वामी जी ने कुशाग्रबुद्धि का परिचय दिया है। हिन्दु-समाज इस विषय में सदैव उनका कृतज्ञ रहेगा।'

महामना गोपालकृष्ण गोखले

'वेदों के विषय में स्वामी जी का मत कितना ग्राह्य है, मैं कह नहीं सकता। किन्तु मैं उनको (Greatest Social Reformer) सबसे महान् समाज-सुधारक मानता हूं।'

शिवकुमार जी शास्त्री महामहोपाध्याय

'इस युग में देववाणी का उद्धार स्वामी जी ने ही किया है—इससे भारत-वर्ष में क्रांति हो रही है।'

योगी अरविन्द घोष

'वेदों के भाष्य के विषय में हमें

विश्वास है कि अन्तिम सर्वाङ्ग सम्पूर्ण भाष्य चाहे जो हो परन्तु भाष्य की सच्ची चाबी के आविष्कर्त्ताओं में श्री स्वामी दयानन्द जी को सबसे प्रथम मान दिया जाएगा।'

डा० स्टाक डी० डी० ने शिकागो (अमरीका) की धार्मिक प्रदर्शिनी में कहा—

'वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान्, साहित्य का पुतला, वेदों के महत्व को समझने वाला, अत्यन्त प्रबल नैयायिक यदि भारतवर्ष में हुआ तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती था।'

ऋषि दयानन्द के उपकार

१. एक ईश्वरोपासना। एक संध्या।
२. वेदों का प्रचार तथा ऊँचा स्थान।
३. स्त्री-जाति का सुधार।

४. विधवाओं का पुनरुद्धार।

५. शुद्धि का द्वार खोल देना।

६. अछूतों का उद्धार।

७. संस्कृत-विद्या का प्रचार।

८ वैदिक संस्कारों की एकता।

९. जातीय प्रेम तथा सहानुभूति।

१०. स्वदेश-प्रेम और भक्ति।

११. देश की स्वतन्त्रता की सदिच्छा।

१२. बाल-विवाह का रोकना।

१३. उत्साह, उद्योग और आशा का भाव।

१४. प्राचीन आर्य-ग्रन्थों से प्रेम।

१५ आर्य-जाति के सङ्गठन का विचार सब को देना।

❀ आर्यवीर की प्रतिज्ञा ❀

दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे ।
दयानन्द का काम पूरा करेंगे ॥
उठाये ध्वजा धर्म की हम फिरेंगे ।
उसी के लिये हम जियेंगे मरेंगे ॥
गुञ्जायेंगे वेदों के हम गीत गाकर ।
दिखायेंगे दुनियाँ पुरानी बनाकर ॥
बसाएंगे शहरों को जंगल बसाकर ।
बितायेंगे जीवन को सच्चा बनाकर ॥
उठायेंगे ऋषियों की आवाज़ को हम ।
बनायेंगे फिर स्वर्ग संसार को हम ॥
मिटायेंगे सब सम्प्रदायों के मत को ।
बनायेंगे फिर आर्य सारे जगत् को ॥
वही प्रेम-गङ्गा यहाँ फिर बहेगी ।
जो संसार की ताप-माला हरेगी ॥

कहेगा जगत् फिर से इक स्वर में सारा ।
वही वृद्ध भारत गुरु है हमारा ॥

भजन

वेदों का डङ्का आलम में,
बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने ।
हर जगह ओम् का झण्डा फिर,
फहरा दिया ऋषि दयानन्द ने ॥१॥

अज्ञान अविद्या की हरसू,
घनघोर घटाएँ छाई थीं ।
कर नष्ट उन्हें जग में प्रकाश,
फैला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥२॥

सिर पर तूफ़ान बला का था,
नज़रों से दूर किनारा था ।
बन कर मल्लाह किनारे पर,
पहुँचा दिया ऋषि दयानन्द ने ॥३॥

घुस गये लुटेरे घर में थे,
सब माल लूट ले जाते थे।
सौ शुक हाथ सोतों का पकड़,
चिठला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥४॥

मक्कारी, दग़ा, फ़रेबों से,
जो माल मुफ़्त का खाते थे।
सब पोल खोल कर दिल उनका,
दहला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥५॥

उड़ गये होश मतवालों के,
मैदान छोड़ कर रफ़ू हुये।
हथियार तर्क का निकाल कर,
चमका दिया ऋषि दयानन्द ने ॥६॥

क़ब्रों में सर को पटकते थे,
कोई दैरो हरम में भटकते थे।
दे ज्ञान उन्हें, मुक्ति का मार्ग,
दिखला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥७॥

करते थे हमेशा चीख चीख,
तौहीन वेद मुक़द्दस की जो।
सिर उनका वेदों के आगे,
झुकवा दिया ऋषि दयानन्द ने ॥८॥

सब छोड़ चुके थे धर्म-कर्म,
गौरव-गुमान, ऋषि-मुनियों का।
फिर संध्या, हवन, यज्ञ करना,
सिखला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥९॥

विद्यालय, गुरुकुल खुलवाये,
क़ायम हर जगह समाज किये।
आदर्श पुरातन शिक्षा का,
बतला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥१०॥

बलिदान किया बलि-वेदी पर,
जीवन-'प्रकाश' हँसते-हँसते।
सच्चे रहबर बन कर सबको,
चेता दिया ऋषि दयानन्द ने ॥११॥

विवाह पर गाने योग्य छन्द

भूमिका

माताओ, बहिनो, देवियो, मैं छन्द सुनाऊं आज
प्रभु का मन में ध्यान धरो सुफल होवें सब काज
सदा क्रोध कर दूर दया से हरइक का सत्कार करो
वैदिकधर्म की हर रीति को हृदय से स्वीकार करो

पहला छन्द

पहला छन्द आनन्दपूर्वक सुनो कान लगाय
वही सतवन्ती नार है जो नाम पति का ध्याय
सिर अपना जो चरण पति पर प्रेमसहित निवाय
लोक और परलोक में, वही सदा सुख पाय

दूसरा छन्द

छन्द दूसरा कहूँ सुनो तुम वेदों का प्रचार करो
सत्य-धर्म पर तन-मन सब कुछ, तुम निसार करो
पढ़ सीता के चरित्र को, अपने शुभ आचार करो
दमयन्ती जैसी बनकर भारत का उद्धार करो।

तीसरा छन्द

छन्द तीसरा कहूं शांति से सुनो ज़रा मन लाय
करो धर्म की रक्षा बहिनो सतयुग फिर आजाय
नम्रभाव हो जावो सभी तुम मान अपमान मिटाय
कर्म करो ऐसे तुम भारत बैकुण्ठ बन जाय ॥

चौथा छन्द

चौथा छन्द सुनो ज़रा तुम करे अर्ज़ यह दास
जो चाहो आयु बढ़े तुम्हारी करो योगाभ्यास
परमेश्वर सम समझ पति को करो इज़्ज़त का पास
कीर्ति तुम्हारी यों बढ़े ज्यों तीज चन्द प्रकाश

पाँचवां छन्द

छन्द पांचवां प्रेमपूर्वक सुनो मेरी माताओ
भजन सच्चिदानन्द का हर पल-छिन तुम गाओ
पतिव्रता स्त्री ज़रा बन के तुम दिखलाओ
लाज राखे प्रभु तुम्हारी उसी का नाम ध्याओ

छठा छन्द

छठा छन्द सुनने से ही तो आए तुम्हें ज्ञान
सास ससुर की सेवा कीजो, यही तीर्थ स्नान
श्रेष्ठ गुरु है पति तुम्हारा यही भाव इक ठान
करे गुरु धारण जो नारी, वह मूर्ख नादान ॥

❀ शुद्धि प्रवेश पद्धति ❀

श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी सभा गुरुकुल भूमि वृन्दावन ने जो प्रवेश (शुद्धि) पद्धति विद्वानों से निर्माण कराई है, उसे नीचे लिखते हैं। उसी के अनुसार प्रवेश (शुद्धि से संस्कार) करना उचित है। जन्म से वैदिकधर्म को न मानने वाले जिस पुरुष या स्त्री को आर्य-समाज अथवा आर्य-जाति में प्रवेश कराना हो उसको अपने २ देश में प्रचलित रीति से क्षौर कराके (यदि स्त्री हो तो क्षौर न करावें), भली-भांति स्नान कराके (स्त्री हो तो सिर सहित स्नान करावें) बहुत स्वच्छ वस्त्र पहना के, वेदी (यज्ञ करने के लिये यजमानादि के बैठने के स्थान) पर आने से पहले सब लोगों

के बीच में उससे नीचे के मन्त्रों का पाठ कराया जावे और अर्थ भी सुना दिया जावे। ये ही मन्त्र बोलकर आचार्य इसके ऊपर कुछ जल के छींटे भी दे दे। वे मन्त्र ये हैं—

पुनन्तु मां देवजनाः,
पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि,
जातवेदः पुनीहि माम् ॥१॥

(देवजनाः) हे सब विद्वान् और श्रेष्ठ पुरुषो! आप (मां) मुझको (पुनन्तु) पवित्र कीजिये अर्थात् समझिये। आप (मनसा) मन के साथ (धियः) बुद्धियों या कर्मों को भी अब (पुनन्तु) पवित्र समझिये। (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणी अर्थात् स्त्री-पुरुष आपकी कृपा से मुझे

(पुनन्तु) पवित्र करें अथवा समझें। (जातवेदः) हे ज्ञानी आचार्य ! आप (माम्) मुझे इन सबके सामने (पुनीहि) पवित्र कीजिये अर्थात् कह दीजिये, पवित्रता की उपाधि मुझे प्रदान कीजिये ॥१॥

पवित्रेण पुनीहि मां,
शुक्रेण देव दीद्यत्
अग्ने ! क्रत्वा क्रतूनतु ॥२॥

(देव) हे शुभगुणयुक्त (अग्ने) ज्ञान के प्रकाशकारक आचार्य ! आप (दीद्यत्) अति-दीप्यमान होते हुए (शुक्रेण) शुद्ध (पवित्रेण) पवित्र कर्म से (मां) मुझे (पुनीहि) पवित्र करें। (क्रतून अनु) और मेरे यज्ञों को ध्यान में रखकर (क्रत्वा) यज्ञ कर्म से मुझको पवित्र कीजिये ॥२॥

यत्ते पवित्रमर्चिषि,
अग्ने विततमन्तरा।
ब्रह्म तेन पुनातु माम् ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञान से तेजस्वी आचार्य (ते) आपको (अर्चिषि) अग्नि की लपट के तुल्य चमत्कार बुद्धि से (अन्तरा) भीतर (यत्) जो (पवित्र) शुद्ध (ब्रह्म) वेद-ज्ञान (वितत) फैला व भरा है (तेन) उसमें (मां) मुझे (पुनातु) पवित्र कीजिये, अर्थात् उसका उपदेश कीजिये जिससे अपना आचरण वेदानुकूल कर सकूं ॥३॥

पवमानः सो अद्य नः,
पवित्रेण विचर्षणिः।
यः पोता स पुनातु माम् ॥४॥

(पवमानः) वेद का उपदेश करके पवित्र

करने वाला (विचर्षणिः) किये तथा न किए हुए सबको जानने वाला है। (सः) वह परमात्मा (अद्य) आज (नः) मुझे (पवित्रेण) सदा पवित्र कर्म करने से (पुनातु) पवित्र करे। और (यः) जो (पोता) स्वभाव से अर्थात् बिना स्वार्थ वाले कारण से ही पवित्र करने वाला है (सः) वह परमात्मा (मां, मुझे पवित्र करे। अर्थात् आज मैं सबके सामने परमात्मा से यह प्रतिज्ञा करता हूं कि कभी वेद-विरुद्ध कार्य न करूंगा, जिससे अपवित्र होऊँ ॥४॥

इन मन्त्रों के पाठ के पीछे वेदी में आसन पर बैठकर आचार्य 'शन्नोदेवी' मंत्र से उसे आचमन करावे और यज्ञोपवीत पहनावे तथा 'गायत्री' मंत्र उच्चारण करावे। संक्षेप से अर्थ भी सुना देना उचित है।

फिर यथा-विधि प्रार्थना मन्त्र, स्वस्ति-वाचन, शान्ति प्रकरण और सामान्य-प्रकरण से सम्पूर्ण हवन को समाप्त करके पूर्णाहुति 'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' से पहिले नीचे के मन्त्रों से आहुति देनी चाहिए।

यद् देवा देवहेडनं,
देवासश्चकृमा वयं।
अग्निर्मा तस्मादेनसो,
विश्वान्मुञ्चत्वं हसः ॥१॥

(देवाःदेवासः) हे विद्वानो! (वयं) हम ने (यत्) जो (देवहेडनं) विद्वानों का अपराध (चकृमा) किया है। (अग्निः) यह यज्ञ की भौतिक अग्नि वा ज्ञानी आचार्य वा प्रकाशरूप परमात्मा (तस्मात्) उस (एनसः) पाप से (मां)

मुझे (मुञ्चतु) छुड़ावे और (विश्वात्)
समस्त (अंहसः) पाप से छुड़ावे ॥१॥

यदि दिवा यदि नक्तम् ,
एनाꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो,
विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥२॥

(यदि) यदि (दिवा) दिन में यदि
(नक्त) रात में (वयं) हमने (एनांसि)
पाप (चकृमा) किये हैं, तो (वायुः)
भौतिक वायु वा अपने ज्ञान से सर्वत्र
पहुँच सकने वाला आचार्य वा ईश्वर
(शेष आगे की भांति) ॥२॥

यदि जाग्रद् यदि स्वप्ने,
एनाꣳसि चकृमा वयम् ।

सूर्यो मां तस्मादेनसो,

विश्वान्मुञ्चत्वँ७ंहसः ॥३॥

यदि (जाग्रत्) जागने की अवस्था में यदि (स्वप्ने) सोने की अवस्था में (वयं) हमने (एनांसि चकृमा) पाप किये हैं तो (सूर्य) भौतिक सूर्य वा ज्ञान का प्रकाशक आचार्य वा परमात्मा (आगे पहले की भांति) ॥३॥

यद् ग्रामे यदरण्ये,

यत्सभायां यदिन्द्रिये,

यच्छूद्रे यदर्ये यद्,

एनश्चकृमा वयं,

यदेकस्याधिधर्मणि,

तस्यावयजनमसि ॥४॥

(यत्) जो (ग्रामे) गांव में (यत् अरण्ये)

जंगल में, (यत् सभायां) सभा में [पक्ष-पातादि] (यत् इन्द्रिये) इन्द्रिय में (पर-निन्दा, परनारी) (यत् शूद्रे) शूद्र के सम्बन्धी, (यदर्ये) जो देवों के सम्बन्धी, (एनः) पाप को (वयं) हम (चकृमा) कर चुके हैं। (एकस्या) स्त्री पुरुष दोनों में से एक के भी (अधिधर्मणि) कर्म के सम्बन्धी (तस्य) उस पाप को हे आचार्य आप (अवयजनं) नाशक (असि) हैं॥

यदि कोई जन्म से वेदविरोधी न हो, किसी कारणवश पतित (वेदविरोधी, ईसाई, यवन आदि मत में प्रविष्ट) हो गया हो और वैदिक धर्मियों में प्रविष्ट होना चाहे तो उससे नीचे के मन्त्र का पाठ भी कराया जावे। हमारी सम्मति में जन्म के पतित से भी इस मन्त्र का पाठ

कराना अनुचित नहीं—

यद् विद्वाँसो यदविद्वाँस,

एनांसि चकृमा वयम् ।

यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत,

विश्वेदेवाः सजोषसः ॥१॥

(विद्वांसः, विद्वांसः) हे विद्वानो ! (वयं) हमने (यत् यत्) जो जो (एनांसि) पाप (चकृमा) किये हैं, (यूयं) आप (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (सजोषसः) प्रीति के साथ (तस्मात्) उस पाप समुदाय से (नः) हमको (मुञ्चत) पृथक् कर दो ॥१॥

इसके पश्चात् अर्थ-सहित गायत्री का पाठ भी उससे कराना चाहिये। फिर नीचे के मन्त्र से एक आहुति देकर पूर्णाहुति

(ओं सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा) कर दीजिये।

ओं अग्ने व्रतपते ! व्रतं चरिष्यामि,
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।

(व्रतपते, अग्ने) व्रतों के पालक हे विद्वद्गण वा ईश्वर ! मैं (व्रतं) प्रण को (चरिष्यामि) पालन करूंगा (तत्) उसको करने में (शकेयम्) आपकी सहायता से समर्थ होऊँ (मे) मेरा (तत्) वह (राध्यताम्) पूरा हो (अहम्) मैं (अनृतात्) झूठ से (इदं) इस (सत्यं) सत्य को (उपैमि) प्राप्त करता हूँ ।।इति।।

शुद्धि के भजन

पतितों को हमीं उठावेंगे,
दलितों को गले लगावेंगे।
कोई अछूत नहीं छोड़ेंगे,
आर्य्य सभी बनावेंगे॥
परमेश्वर के भक्त बनाके,
सब को ओ३म् जपावेंगे।
छूतछात का भ्रम मिटा के,
सब भाई बन जावेंगे।
प्रेम प्रीति की रीति सिखा के,
वैर विरोध हटावेंगे॥
वैदिक धर्मी सारे बन के,
अपना जोर बढ़ावेंगे।
दयानन्द स्वामी की आज्ञा,
पूरी कर दिखलावेंगे॥

—:०:—

भजन २

यह वैदिक धर्म हमारा,
है वैदिक धर्म हमारा ॥
हम हैं इसके रक्षक सारे,
इस पर अपना तन मन वारें ।
मिलकर अपना व्रत यह धारें,
है यही प्राण अधारा ॥१॥ यह०

मातृभूमि की रक्षा करना,
भक्ति भाव से भेटें धरना ।
इसके ऊपर जीना मरना,
है कर्त्तव्य हमारा ॥२॥ यह०

बैर भाव को दूर भगा कर,
जात-पांत का भेद भुला कर ।
मिल आओ सब गले लगाकर,
फिर बहे प्रेम की धारा ॥३॥ यह०

घर-घर वेद मन्त्र सब गाओ,
वेदों को फिर से अपनाओ।
ऋषि उपदेश क्रिया में लाओ,
फिर बने आर्य जग सारा ॥४॥ यह०
सब मित्र ऋषिवर के गुण गाओ,
उनके आगे सीस झुकाओ,
जिन सब का जन्म सुधारा ॥५॥ यह०

आर्यसमाज की विशेष घटनायें

१७६८-स्वामी विरजानन्द जी का जन्म
१८२४-स्वामी दयानन्द जी का जन्म टंकारा (मोरवी राज्य में)
१८३६-स्वामी विरजानन्द का मथुरा में वास आरम्भ।
१८३८-स्वामी दयानन्द को बोध-शिवरात्रि
१८४०-स्वामी दयानन्द की बहन का देहांत
१८४४-स्वामी दयानन्द का गृह-त्याग

१८४७-मूलशंकर का संन्यास धारण कर दयानन्द बनना।

१८५४-महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) का जन्म।

१८५७-स्वामी विरजानन्द की प्रतिज्ञा ऋषिकृत ग्रन्थ पढ़ाने के विषयक।

१८५८-पं० लेखराम का जन्म।

१८६०-स्वामी दयानन्द की स्वामी विरजानन्द द्वारा शिक्षा।

१८६३-स्वामी दयानन्द का स्वामी विरजानन्द से आज्ञा प्राप्त कर सत्य का प्रचार करना।

१८६४-पण्डित गुरुदत्त का जन्म।

१८६५-स्वामी दयानन्द की स्वामी विरजानन्द से पुनः भेंट।

१८६६-स्वामी दयानन्द का हरिद्वार कुम्भ पर पाखण्ड-खण्डिनी पताका गाड़ना

१८६७-स्वामी दयानन्द को प्रथम बार विष दिया गया।

१८६८-स्वामी विरजानन्द जी का देहान्त।

१८६९-स्वामी दयानन्द का काशी शास्त्रार्थ

१८७०-स्वामी दयानन्द का म० केशवचंद्र सेन व म० देवेन्द्रनाथ से वार्तालाप

१८७५-आर्यसमाज की बम्बई में स्थापना

१८७७-आर्यसमाज लाहौर की स्थापना।

१८७८-आर्यसमाज मेरठ की स्थापना।

१८८१-पं० लेखराम की दयानन्द से भेंट।

१८८३-पं० गुरुदत्त को स्वामी दयानन्द का दर्शन प्राप्त। स्वामी दयानन्द का देहांत दीपावली के दिन अजमेर में।

१८८६-दयानंद कालेज लाहौर की स्थापना।

१८८९-पं० गुरुदत्त का देहांत।

१८९७-पं० लेखराम का एक मुसलमान द्वारा बलिदान ६ मार्च लाहौर में ।

१९०१-गुरुकुल-वृन्दावन की स्थापना ।

१९०२ गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना ।

१९०५-कांगड़ा दुर्भिक्ष में आर्यसमाज की सहायता ।

१९१३-स्व० दर्शनानन्द का देहान्त ।

१९२१-मोपला विद्रोह के पश्चात् मालाबार में आर्यसमाज का कार्य व कालीकट (मद्रास) में आर्यसमाज की स्थापना ।

१९२३-म० रामचन्द्र का जम्मू राज्य में अछूतोद्धार कार्य के कारण बलिदान ।

१९२५-मथुरा में दयानन्द शताब्दी उत्सव

१९२६-टङ्कारा में दयानंद शताब्दी उत्सव

१९२६-स्वामी श्रद्धानंद का एक मुसलमान

मान अब्दुलरशीद द्वारा बलिदान
२३ दिसम्बर को देहली में।

१९२७-म० राजपाल पर २६ सितम्बर
को खुदाबख्श का आक्रमण।

१९२७-स्वामी सत्यानन्दजी पर ९ अक्तू-
बर को अब्दुलअजीज का लाहौर
में आक्रमण।

१९२७-५ नवम्बर को देहली में भारत के
आर्यों की कांग्रेस।

१९२९-६ अप्रैल को लाहौर में एक यवन
द्वारा खंजर से दो बजे दोपहर म०
राजपाल का बलिदान।

१९३३-अजमेर में दयानन्द-निर्वाण-अर्ध
शताब्दी।

१९३४-म० पं० आर्यमुनि का देहान्त,
मोगा में।

१९३८-डी० ए० वी० कालेज के संस्थापक महात्मा हंसराज जी का स्वर्गवास।

१९४०-हैदराबाद रियासत में शानदार सफल सत्याग्रह।

१९४७-भारत-विभाजन के बाद पूर्वी पंजाब में फिर से आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्य प्रादेशिक सभा की स्थापना और प्रचार-कार्य आरम्भ।

★

गायत्री-ज्ञान

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्।

'ओम्' हो रक्षक हमारे,
सब गुणों की खान हो।
'भूः' सदा सब प्राणियों में,
प्राण के भी प्राण हो॥
'भुवः' सब दुखों को करते,
दूर कृपानिधान हो।
'स्वः' सदा सुखरूप सुखमय,
सुखद सुखधि महान् हो॥
'तत्' वही सुप्रसिद्ध ब्रह्म,
वेदवर्णित सार हो।
देव 'सवितुः' सर्व उत्पाद क,
हो, पालनहार हो॥

शुभ 'वरेण्यम्' वरण करने
योग्य भगवन् आप हो।
शुद्ध 'भर्गः' मलरहित,
निर्लेप हो, निष्पाप हो॥
दिव्य गुण 'देवस्य' दिव्य-
स्वरूप देव अनूप के।
'धीमहि' धारें हृदय में,
दिव्य गुण सब आपके॥
'धियो यो नः' वह हमारी,
बुद्धियों का हित करें।
'अमर' 'प्रचोदयात' नित,
सन्मार्ग पर प्रेरित करें॥

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त

सत्संग के उपरान्त निम्नलिखित ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के चार मन्त्रों का सम्मिलित पाठ होना चाहिये :—

ओ३म् सं समिधुवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ। इलस्पदे समिध्यसे सनो वसून्याभर ॥

ऋ० १०।१९१।१॥

हे (वृषन्) बलवान् और (अर्य) श्रेष्ठ (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर! तुम (विश्वानि) सब पदार्थों को (इत्) निश्चय से (संसमिधुवसे) एकत्रित करके सम्मिलित करते हो और (इलस्पदे) भूमि अथवा वाणी के स्थान में (सं इध्यसे) उत्तम प्रकार

से प्रकाशित हो। इसलिए (सः) वह तुम (नः) हम सबके लिये (वसूनि) सब प्रकार से निवास साधन धन (आभर) प्राप्त कराओ।

ओ३म् संगच्छध्वं सं वदध्वं संवो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते॥

ऋ० १०।१९१।२॥

हे भक्तो! तुम सब (संगच्छध्वं) एक होकर प्रगति करो। (संवदध्वं) एक दूसरे से मिलकर अच्छी प्रकार बोलो। (वः मनांसि) तुम सबके मन (सं जानताम) उत्तम संस्कारों से युक्त हों। तथा (पूर्वे) पूर्वकालीन (संजानान देवाः) उत्तम ज्ञानी और व्यवहार-चतुर लोग (यथा) जिस

प्रकार (भागं) अपने कर्तव्य का भाग (उप आसते) करते आये हैं, उसी प्रकार तुम भी अपना कर्तव्य करते जाओ।

ओ३म् समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

ऋ० १०।१६३।३॥

तुम सबका (मन्त्रः) विचार (समानः) एक हो, (समितिः) तुम्हारी सभा (समानी) एक जैसी हो। (मनः समानं) तुम सब के मन एक विचार से युक्त हों। (एषां चित्त सह) इन सबका चित्त भी सब के साथ ही हो। (वः) तुम सब को (समानं मंत्रम्) एक ही विचार से (अभि-मन्त्रये) युक्त करता हूँ और (वः) तुम सब

को (समानेन हविषा) एक प्रकार के अन्न और उपभोग (जुहोमि) देता हूँ।

ओ३म् समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

ऋ० १०।१६४।४॥

(वः आकूतिः) तुम सबका ध्येय समान ही हो। (वः हृदयानि) तुम सब के हृदय समान हों। (वः मनः) तुम सब का मन (समानम् अस्तु) समान हो। (यथा) जिससे (वः) तुम सबका व्यवहार (सह सु असति) समान होवे।

॥ इति ॥

स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए उपयोगी ग्रंथ ४२५

स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए ग्रन्थ

संशोधित—परिवर्द्धित संस्करण !

उपनिषद्-प्रकाश

टीकाकार—स्व० स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

सम्पादक व संशोधक—स्वामी वेदानन्द तीर्थ

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक व माण्डूक्य उपनिषदों का सरल अनुवाद जिसे सभी नर-नारी सुगमता से समझकर लाभ उठा सकते हैं। आवश्यक टिप्पणियों तथा शंका-समाधान से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। श्लोकों की व्याख्या प्रश्न-उत्तर के रूप में की गई है। उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इससे सरल पुस्तक और कोई नहीं।

मूल्य चार रुपया आठ आना

दयानन्द प्रकाश

[ले०—श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज]

यह आर्य समाज के संस्थापक, महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण, प्रामाणिक तथा भक्ति-रसपूर्ण जीवन-चरित्र है। भाषा और शैली की दृष्टि से यह पुस्तक अद्वितीय है। ऋषि-भक्तों के लिए 'दयानन्द-प्रकाश' एक अनुपम भेंट है। दैनिक पाठ और सत्संगों के लिए सर्वोत्तम पुस्तक है। पांच सौ पृष्ठ।

मूल्य चार रुपया आठ आना

स्वाध्याय-प्रेमियों के लिये उपयोगी ग्रंथ ४२७

अमृत-वर्षा

यह पुस्तक स्वर्गीय महात्मा नारायण स्वामी जी के अमूल्य उपदेशों का संग्रह है। प्रत्येक आर्य परिवार में इस पुस्तक का स्वाध्याय होना चाहिए।

मूल्य डेढ़ रुपया

ईश्वर-भक्ति

इस पुस्तक के लेखक स्वर्गीय स्वामी सर्वदानन्द जी हैं। पुस्तक का विषय और उपयोगिता नाम से ही स्पष्ट है। भाषा सरल और टाइप मोटा।

मूल्य एक रुपया आठ आना

आर्य देवियों के पढ़ने योग्य पुस्तकें

१—गृहस्थ-जीवन रहस्य
[लेखक—महात्मा नारायण स्वामी] २॥)

२—आदर्श-पत्नी
[लेखक—पं० सन्तराम बी० ए०] २॥)

३—जीवन-साथी
[लेखक—सत्यकाम विद्यालङ्कार] ३)

४—महारानी झांसी
[लेखक—शान्ति नारायण] ४)

५—वेद में स्त्रियां १॥)

६—सच्ची देवियां १)

७—खून की होली २)

आर्य बालक बालिकाओं के लिए धार्मिक तथा शिक्षाप्रद पुस्तकें

१. बाल-सत्यार्थप्रकाश
[लेखक—प्रो० विश्वनाथ] १)

२—हमारे स्वामी
[लेखक—पं० चमूपति एम० ए०] ||=)

३—सरल महाभारत
[लेखक—भीमसेन विद्यालङ्कार] |||)

४—सरल रामायण
[लेखक—सत्यकाम विद्यालङ्कार] |||)

५- वैदिक-धर्म आर्यसमाज-प्रश्नोत्तरी
[लेखक—धर्मदेव विद्यावाचस्पति] ||)

६—अमर-शहीद स्वामी श्रद्धानन्द
[लेखक—धर्मदेव विद्यावाचस्पति] १)

७—महाराणा प्रताप |=)

८—बाल शिवाजी |=)

स्वाध्याय-प्रेमियों के लिये ग्रन्थ ४३१

संस्कृत स्वयं-शिक्षक

लेखक—वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी

इसके पढ़ने से हिन्दी जानने वाला, बिना किसी पण्डित की सहायता के, घर बैठे संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस पुस्तक में आपने बड़ो ही सरल और वैज्ञानिक विधि से संस्कृत सिखाने की सफल चेष्टा की है। हमारा दावा है कि आप एक बार इसे पढ़ जावें तो निश्चय ही आप संस्कृत लिख तथा आसानीसे बोल सकेंगे। पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। तीनों भागों का मूल्य पाच रुपए।

अन्तिम निवेदन

प्रिय पाठक !

हमारे पुस्तकालय में आर्यसमाज तथा वैदिक धर्म सम्बन्धी सभी पुस्तकें, चाहे वह किसी भी लेखक द्वारा लिखी हो और किसी भी प्रकाशक द्वारा प्रकाशित हुई हों, हर समय मिल सकती हैं। आपको जब कभी किसी पुस्तक की आवश्यकता हो, हमें लिखें। हमें विश्वास है आप हमारे व्यवहार से सन्तुष्ट होंगे। आर्यसमाजों तथा शिक्षण-संस्थाओं को विशेष रियायत दी जाती है।

भवदीय –

व्यवस्थापक

राजपाल एण्ड सन्ज़,

नई सड़क, दिल्ली।